खंड

2

प्राचीन एवं आधुनिक पाश्चात्य अनुवाद सिद्धांत

इकाई 5

अनुवाद सिद्धांत : परिचय 59

इकाई 6

अनुवाद के प्राचीन पाश्चात्य सिद्धांत 73

इकाई 7

अनुवाद के आधुनिक पाश्चात्य सिद्धांत 84

इकाई 8

उत्तर आधुनिकता और अनुवाद के सिद्धांत 96

खंड परिचय

खण्ड 2 प्राचीन एवं आधुनिक पाश्चात्य अनुवाद सिद्धांत

पाठ्यक्रम एम.टी.टी.10 अनुवाद सिद्धांत के खण्ड 2 **'प्राचीन एवं आधुनिक पाश्चात्य अनुवाद सिद्धांत'** के अन्तर्गत 4 इकाईयां सम्मिलित हैं। इन इकाईयों का क्रम पूरे पाठ्यक्रम की इकाईयों के क्रम में 5,6,7 तथा 8 है। इकाई 5 **'अनुवाद सिद्धांत : परिचय'** के अन्तर्गत प्राचीन पाश्चात्य अनुवाद सिद्धांत एवं चिन्तन की परम्परा पाश्चात्य मध्ययुगीन तथा आधुनिक चिन्तन एवं चिन्तकों का परिचय देने के साथ ही, भारतीय एवं बौद्ध चिन्तन परम्परा तथा प्रमुख अनुवाद सिद्धांतों की चर्चा की गई है। इकाई 6 **'अनुवाद के प्राचीन पाश्चात्य सिद्धांत'** इकाई में ऐतेन दोले (Etelnne Dolet) (16वीं शताब्दी) से लेकर 19वीं शताब्दी के अंत तक के पश्चिमी सिद्धांतों एवं सिद्धांतकारों का विवेचन किया गया है इनमें अनुवाद चिन्तन या सिद्धांत विवेचन की आरंभिक अवस्था से लेकर बाइबिल के अनुवादों तथा उसके बाद के अनुवाद सिद्धांत विवेचन का विस्तृत परिचय दिया गया है। **अनुवाद के आधुनिक पाश्चात्य सिद्धांत** (ईकाई 7) में विभिन्न स्कूलों (प्रागस्कूल, लन्दन स्कूल, यू.ए.स्कूल आदि) के अतिरिक्त प्रमुख अनुवाद सिद्धांतों यथा संरचना परक, अर्थपरक, समतुल्यता, सापेक्षता, व्याख्या, सांस्कृतिक संदर्भों का एकीकरण तथा पुनर्कोडीकरण सिद्धांतों के विषय में जानकारी दी गई।

इकाई 8 **'उत्तर आधुनिकता और अनुवाद के सिद्धांत'** में आधुनिकता तथा उत्तर आधुनिकता को स्पष्ट करते हुए उत्तर आधुनिकता की अभिवृत्तियों के विवेचन के अतिरिक्त उत्तर आधुनिकता एवं अनुवाद के विभिन्न सिद्धांतों का विवेचन किया गया है। इसमें दलित साहित्य तथा स्त्री साहित्य के अनुवादों पर भी विचार किया गया है।

इकाई 5 अनुवाद सिद्धांत : परिचय

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 अनुवाद सिद्धांत : पाश्चात्य परंपरा

5.2.1 पाश्चात्य अनुवाद चिंतन : प्राचीन युग

5.2.2 पाश्चात्य अनुवाद चिंतन : मध्ययुग

5.2.3 पाश्चात्य अनुवाद चिंतन : आधुनिक युग

5.2.4 पाश्चात्य अनुवाद चिंतन

5.3 अनुवाद-सिद्धांत : भारतीय परंपरा

5.4 अनुवाद-सिद्धांत : बौद्ध-चिंतन

5.4.1 बौद्ध साहित्य-परिचय

5.4.2 अनुवाद के बौद्ध सिद्धांत

5.5 प्रमुख अनुवाद-सिद्धांत

5.6 सारांश

5.7 अभ्यास के लिए प्रश्न

5.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

5.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप-

- अनुवाद की विकास-परंपरा को जान सकेंगे।
- अनुवाद सम्बंधी प्राचीन पाश्चात्य दृष्टिकोण से परिचित हो सकेंगे।
- अनुवाद संबंधी नवीन पाश्चात्य दृष्टिकोण से परिचित हो सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

भूमंडलीकरण के इस युग में अनुवाद की आवश्यकता और महत्ता किसी से छिपी नहीं है। आज समूचा विश्व एक ग्राम में बदल गया हे। ग्लोबल विलेज' की अवधारणा स्वीकृति पा रही है। सूचना प्रौद्योगिकी और अनुवाद की इस प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण भूमिका है। संसार में कहीं भी जो नई खोजें होती हैं, नए विचार आते हैं, उनसे शीघ्रातिशीघ्र अन्य भाषा-भाषी परिचित होना चाहते हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अनुवाद एक अपरिहार्य साधन है। यह मानना उचित है कि अनुवाद भाषिक और सांस्कृतिक रूप से विश्व को संघटित करता है। अनुवाद के माध्यम से दो भाषाओं के साहित्य, विज्ञान, कला और संस्कृति में निकटता आती है। परस्पर आदान-प्रदान की प्रक्रिया से विकास गति तेज होती है।

इक्कीसवीं सदी में तो अनुवाद वैश्विक परिप्रेक्ष्य में अनिवार्य ही नहीं बल्कि अपरिहार्य बन गया है। विभिन्न देशों के मध्य आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक संबंधों के लिए दस्तावेज दोनों देशों की भाषाओं में तैयार किये जाते हैं और अनुवाद के माध्यम से समझे जाते हैं। इस प्रकार आज अनुवाद की आवश्यकता और महत्ता स्वतः सिद्ध है।

अपना देश भारत स्वयं में एक लघु विश्व है, यहां अनेक भाषा-भाषी जन निवास करते हैं। इस भाषायी-वैविध्य के मध्य भावात्मक एकता और संबंध बनाए रखने में अनुवाद की भूमिका और अधिक बढ़ जाती है। वस्तुतः अनुवाद सुदृढ़ सेतु का कार्य करता है और मानव के सर्वांगीण विकास में सहयोगी बनता है।

5.2 अनुवाद सिद्धांत : पाश्चात्य-परंपरा

5.2.1 पाश्चात्य अनुवाद चिंतन : प्राचीन युग

भाषा की भांति अनुवाद का रूप भी पहले मौखिक था। अनुवाद की परम्परा प्राचीन है। भाषा का लिखित रूप लगभग छठी-सातवीं शताब्दी से मिलने लगता है। ऐसी मान्यता है कि भाषा के लिखित रूप के साथ अनुवाद का प्रचलन हुआ होगा।

अनुवाद की प्राचीन परंपरा ईसा के लगभग तीन हजार वर्ष पूर्व से मिलती है। असीरिया के राजा सैरगोन **(Sargon)** के राज्य में अनेक भाषाएं थीं। राजा अपनी घोषणाएं मुख्य भाषा असीरियन में करता था और इन घोषणाओं का अनुवाद राज्य के अन्य भाषाओं में प्रजा की सुविधा के लिए किया जाता था। अनुवाद की प्राचीनता के विषय में एक सूचनात्मक ज्ञान यह है कि पांचवी-छठी शताब्दी ई0पू0 यहूदी लोग हिब्रू भाषा में होने वाले प्रवचन को सुनते थे, लेकिन ठीक से समझ न पाने के कारण दुभाषिए से आर्मेइक भाषा में अनूदित कराकर समझते थे।

हम्मूरबी (Hammurabi) (इक्कीसवीं शदी ई.पू.) द्वारा अपने सरकारी आदेशों का प्रजा के हित में अनेक भाषाओं में अनुवाद करवाया जाता था।

अनुवाद का शोध व्यवस्थित रूप में दूसरी सदी ई.पू. से मिलता है। एक फ्रांसीसी इंजीनियर को एलेक्जेंड्रिया के पास रोजेटा प्रस्तर में पाटोलयी पंचम का आदेश ग्रीक भाषा में उत्कीर्ण मिला है। जिसका अनुवाद ही रोग्लाइफिक और देमांतिक (मिस्त्र की प्राचीन) लिपियों में हुआ है।

वास्तव में अनुवाद की व्यवस्थित परम्परा बाइबिल के अनुवादों के साथ जुड़ी हुई है। बाइबिल के ओल्ड टेस्टामेंट (Old testament) की भाषा हिब्रू थी। ग्रीक भाषा-भाषी बहुत से यहूदी उसे नहीं समझ पाते थे। अतः ओल्ड टेस्टामेंट के कई अनुवाद किए गए, इनमें सबसे प्राचीन अनुवाद 270 ई.पू. में किया गया था।

ई.पू. दूसरी शताब्दी में अकिवला (Aquila) ने बाइबिल के (Old testament) का अनुवाद जेबनेह अकादमी के अनुरोध पर किया। यह अनुवाद प्राचीन तो है किन्तु उपयुक्त अनुवाद नहीं है। इससे मूलभावों को भी समझने में बहुत कठिनाई होती है। दूसरी सदी ई.पू. में ही बाइबिल (Old Testament) का अनुवाद थिओडोशियन तथा सायमेशस ने भी किया। ये अनुवाद भी शब्द-शब्द पर आधारित होने से कहीं-कहीं अटपटे से हो गये हैं। यूनान में बाइबिल के सर्वाधिक अनुवाद हुए। लैटिन भाषा में भी अनुवाद कार्य प्राचीन है। ग्रीक भाषा से लैटिन भाषा में अनेक मार्मिक, साहित्यिक और दार्शनिक ग्रंथों के अनुवाद हुए। इस संदर्भ में यह कहना समीचीन होगा कि लैटिन का अनुवाद-परंपरा के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान है। लगभग 240 ई. पू. लिवियस एंड्रोनिक्स (Livias Andronicus) के द्वारा होमर के 'ओडेसी' नामक महाकाव्य का लैटिन के छंदों में पद्यानुवाद किया गया। लैटिन अनुवाद कर्ताओं में नेवियस और एन्नियस होरेस, कैतुलस, सिसरो आदि उल्लेखनीय हैं, इसमें सिसरों का कार्य सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने प्लेटो के सुप्रसिद्ध ग्रंथ प्रोतागोरस (Protagoras) का सुंदर अनुवाद किया। सिसरो ने ग्रीक भाषा के कुछ नाटकों का भी अनुवाद किया, और अनुवाद की कठिनाइयों की भी चर्चा की। वे शब्द प्रति शब्द अनुवाद के पक्षधर नहीं थे। उनकी मान्यता है "सच बात तो यह है कि स्रोत भाषा के अभिव्यक्त सौंदर्य को सुरक्षित रख पाना हमेशा संभव नहीं हो पाता। यदि मैं शब्द प्रति शब्द अनुवाद करता हूं तो वह अटपटा लगेगा और आवश्यकता से विवश होकर वाक्य विन्यास या शब्द योजना में कोई परिवर्तन करता हूं तो ऐसा लगेगा जैसे मैं अनुवादक के कार्य से च्युत हो गया हूं।"

इसाई धर्म के प्रचार-प्रसार के बढ़ने के साथ बाइबिल के अनुवादों की मांग बढ़ती गई। अतः लैटिन में बाइबिल के बहुत अधिक अनुवाद हुए किन्तु ये अनुवाद स्तरीय न होकर अटपटे थे। अतः 384 ई. में सेंट डेआसस ने बाइबिल के अनुवाद-कार्य का दायित्व सेंट जेरोम को दिया। जेरोम शब्द प्रति शब्द अनुवाद की अपेक्षा भाव के स्थान पर भाव

अनुवाद को उचित मानते थे। उन्होंने परम्परा से हटकर बाइबिल के अर्थानुगामी अनुवाद की नवीन शैली का प्रचलन किया। यद्यपि बाइबिल के अब तक के अनुवादों में यह श्रेष्ठतम अनुवाद था किन्तु परम्परावादी और रूढ़िवादी लोगों ने इस अनुवाद का विरोध करते हुए जेरोम को धर्मद्रोही भी घोषित कर दिया। वास्तविकता और सत्यता को दबाया नहीं जा सकता, आज जेरोम को 'अनुवाद का मसीहा' और व्यवस्थित अनुवादक माना जाता है।

5.2.2 पाश्चात्य अनुवाद चिंतन : मध्ययुग

मध्य युग में भी यूरोप में लैटिन में अनुवाद कार्य होता रहा किन्तु ये अनुवाद सरस और सहज न होकर नीरस थे, अधिकांशतः धार्मिक निबंधों के अनुवाद हुए। वेनरेबल बेदे ने जॉन रचित 'गास्फेल' का अनुवाद 735 ई. में किया। अनुवाद के विकास क्रम में यह अनुवाद महत्त्वपूर्ण है।

12वीं सदी में स्पेन के तोलदो में विशप डॉन राइमुनदो ने अनुवाद का एक विशेष स्कूल स्थापित किया। यहां ग्रीक भाषा के कई ग्रंथों के अनुवाद अरबी और सीरियाई भाषाओं के माध्यम से लैटिन में हुए। इसीलिए ये अनुवाद बहुत व्यवस्थित नहीं हो पाए। इस युग में शब्द प्रति शब्द अनुवाद का विरोध होने लगा। मेमोनिदस इस प्रकार के अनुवाद के विरोध करने वालों में प्रमुख थे।

अनुवाद के विकास में अरब का भी योगदान उल्लेखनीय है। अरब जिज्ञासु और ज्ञान पिपासु थे। वे कहीं से भी नवीन ज्ञान-विज्ञान, ज्ञान के लिए अनुशासनों को अनुवाद के माध्यम से प्राप्तकर अपने वाङ्मय को समृद्ध करने में उत्साही थे। अरबी लोगों ने आठवीं, नवीं और दसवीं सदी में भारतीय वाङ्मय-अंकगणित, रेखागणित, ज्योतिष, खगोल विज्ञान, संगीत, सर्प विज्ञान, चिकित्साशास्त्र, सुश्रुत, चरक, नीतिशास्त्र, अर्थ-शास्त्र, महाभारत (अंशतः) पंचतंत्र आदि ग्रंथों के अनुवाद किए। इसी प्रकार नवीं और दसवीं सदी में प्लेटो और अरस्तू के ग्रंथों के अनुवाद अरबों ने किया। अरब में भावानुगत अनुवाद को महत्त्व दिया गया, वहां शब्दानुगत अनुवाद के प्रति आग्रह नहीं दिखाई पड़ता।

पुनर्जागरण युगीन-चिंतन

लियोंटियस पाइलेट्स ने होमर का लैटिन में अनुवाद किया। इस अनुवाद की पुनर्जागरण के आन्दोलन में महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। जीवोबानी बोकाच्चो (1313-1375) और फ्रांसेस्को पेटार्क (1304-1374) ने पाइलेट्स को अनुवाद के लिए प्रोत्साहित किया था।

इसी बीच अंग्रेजी में फ्रांसीसी कथाओं का अनुवाद किया। इनके अनुवाद में स्वच्छंदता अधिक है विलियम कैक्सटन तथा क्रिसटोफर मारलो ने आविड की कृति 'मेटामोरफोसीज' का सुंदर अनुवाद किया। किन्तु यह अनुवाद फ्रांसीसी अनुवाद से किया गया था, मूल कृति से नहीं।

अंग्रेजी में अनुवाद का वास्तविक युग एलिजाबेथ प्रथम और जेम्स प्रथम के शासनकाल से शुरू होता है दार्शनिक प्लुटार्क (46-126) की कृति 'प्लाइज' का अनुवाद सर टॉमस नार्थ द्वारा 1579 ई. में किया गया। इसका उपयोग विलियम शेक्सपीयर ने भी किया। इस अनुवाद को विशेष प्रसिद्ध मिली। इंग्लैंड में अनुवाद की एक सुसमृद्ध परम्परा मिलती है। कहा जाता है कि 15वीं शदी में इंग्लैंड में मूललेखन की अपेक्षा अनुवाद अधिक हुए। इन जीवनियों ने अंग्रेजी साहित्य को बहुत प्रेरित किया और होमर के इलियड का अनुवाद 1598-1616 मेंपूर्ण किया। ड्राइडन ने वर्जिल के महाकाव्य 'इनीद' का अनुवाद किया जो 1967 में छपा। ड्राइडन ने अनुवाद को एक कला के रूप में प्रतिष्ठित किया। उन्होंने शब्दानुवाद की अपेक्षा भावानुवाद को श्रेष्ठ माना है।

अलेक्जेंडर पोप ने 'इलियड' और 'ओडसी' का पद्यानुवाद किया। कॉपर ने भी 'इलियड' का अनुवाद किया। ये अनुवादक मूलनिष्ठता के पक्षपाती थे। जॉन वेस्लें ने बाइबिल के न्यू टेस्टामेंट का अनुवाद किया। वेस्ले के अनुवाद से अनुवाद चिंतन को बहुत बल मिला।

प्रसिद्ध कवि और समीक्षक मैथ्यू आर्नल्ड एक श्रेष्ठ अनुवादक भी थे। होमर के काव्य के कुछ अंशों का अनुवाद करते हुए उन्होंने गंभीर अनुवाद चिंतन भी किया। 'ऑन ट्रांसलेटिंग होमर' पर उन्होंने चार व्याख्यान भी दिए। उनके विचार से अनुवाद में मूलनिष्ठता होनी चाहिए। वे अनुवाद को सक्षम पाठक के लिए मानते हैं, सामान्य पाठक के लिए नहीं।

अनुवाद के क्षेत्र में एडवर्ड फिट्ज़जेराल्ड का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उन्हें उमर खैय्याम की रूबाइयों के अनुवाद से विशेष प्रसिद्धि और लोकप्रियता मिली। उन्होंने अपने अनुवाद में भावानुवाद और अनुकरण को अपनाया। उनके विचार से जीवंतता और आकर्षण लाने के लिए मूल रचना में संस्कार किया जा सकता है। बाइबिल के अनुवाद के संबंध में दो मत और देखने को मिलते हैं-

एक मत में धर्म भीरू भक्त बाइबिल के शब्दों और उसके क्रम को मंत्र की भांति महत्त्वपूर्ण मानते थे। अतः वे शब्दानुवाद के पक्षधर थे। इसमें शब्दों का क्रम भी मूल के समान तथा संभव करने का आग्रह था।

दूसरे मत में कुछ लोग भाव को महत्त्व देते हुए भावानुवाद के पक्षधर थे। उनके विचार से भावानुवाद से बाइबिल को समझना सरल हो जाएगा और गैर ईसाई भी समझ सकेंगे। सेंट जेरोम ने इस प्रकार का अनुवाद किया था।

मार्टिन लूथर (1483-1546) अनुवाद के सैद्धांतिक विकास में उल्लेखनीय हैं। उन्होंने अनुवाद के कुछ सिद्धांत प्रस्तुत किये-

1. अनुवाद पूर्णतः बोधगम्य हो।
2. मूलपाठ के शब्दक्रम को आवश्यकता के अनुसार बदला जा सकता है।
3. अर्थ की सटीक अभिव्यक्ति के लिए ऐसे अनेक सहायक शब्द या सहायक क्रियाएं जोड़ी जा सकती हैं जो मूल पाठ में नहीं है
4. अनुवाद को स्पष्ट करने के लिए संयोजक और वियोजक आदि का भी प्रयोग किया जा सकता है, भले ही वे मूलपाठ में प्रयुक्त न हो।
5. स्रोत भाषा के ऐसे शब्द जिनके सामानार्थी लक्ष्य भाषा में न उपलब्ध हों, उन्हें छोड़ा जा सकता है।
6. मूल पाठ में यदि कोई ऐसा शब्द है जिसका विकल्प लक्ष्य भाषा में उपलब्ध नहीं है किन्तु उसे छोड़ा नहीं जा सकता तो उसे पदबंध द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।
7. मूल पाठ के अलंकारों को छोड़ा जा सकता है या नए अलंकारों को जोड़ा जा सकता है। अलंकारिक अभिव्यक्ति का अनुवाद अलंकारिक अभिव्यक्ति में तथा अनालंकारिक अभिव्यक्ति का अनुवाद अनालंकारिक अभिव्यक्ति में किया जा सकता है।
8. मूल पाठ के तथ्यों के प्रति पूर्ण सावधानी रखनी चाहिए। पाठ-भेदों पर भी ध्यान देना चाहिए।

एतीन दोले के अनुवाद-सिद्धांत

एतीनदोले (1509-1546 ई.) फ्रांसीसी विचारक थे। उन्होंने अनुवाद के पांच मूल भूत सिद्धांतों का उल्लेख अपने एक लेख (1540 ई.) में किया-

1. अनुवादक को मूलरचना के भाव तथा उसके रचनाकार के उद्देश्य को भली-भांति समझ लेना चाहिए।
2. अनुवादक का स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा दोनों पर अच्छा अधिकार होना चाहिए।
3. अनुवादक को शब्द प्रति शब्द अनुवाद से बचना चाहिए क्योंकि इससे मूल रचना का अभिव्यक्ति-सौंदर्य नष्ट हो जाता है और अर्थ की भी क्षति होती है।
4. अनुवाद बोलचाल की भाषा में हो। अनुवादक को अप्रचलित और जटिल शब्दों के प्रयोग से बचना चाहिए।
5. अनुवादक को 'शब्द चयन' और वाक्य में 'पदक्रम' के द्वारा ऐसा प्रभाव उत्पन्न करना चाहिए, जो मूल के अनुरूप हो।

टिटलर (1781-1814) के अनुवाद-सिद्धांत

अलेक्सान्द्र टिटलर को डॉ. भोलानाथ तिवारी सच्चे अर्थों में विश्व के प्रथम अनुवाद-सिद्धांत-शास्त्री के रूप में स्वीकार करते हैं। टिटलर के ग्रंथ का नाम 'ऐन एसे ऑन द प्रिंसिपल्स आफ ट्रान्सलेशन' है। इसमें अनुवाद सम्बन्धी उनके विचार इस प्रकार हैं:

1. अनुवाद में मूल रचना का सारा कथ्य आ जाना चाहिए।
2. अनुवाद की शैली तथा प्रणाली मूल की भांति होनी चाहिए।
3. अनुवाद में मूल की भांति सहज प्रवाह होना चाहिए।

मैथ्यू आर्नल्ड (1822-1888) के अनुवाद-सिद्धांत

मैथ्यू आर्नल्ड अनुवादक के साथ अनुवाद-चिंतक भी थे। उन्होंने होमर के कुछ अंशों का अनुवाद किया। 'ऑन ट्रांसलेटिंग होमर' नामक भाषण में उनके अनुवाद सिद्धांत उल्लिखित हुए हैं-

जर्मन अनुवादकों में मार्टिन लूथर (1483-1546) महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने अनुवाद चिंतन को सुदृढ़ आधार प्रदान करते हुए उसे नई दिशा भी दी। उन्होंने 1522 में बाइबिल के न्यू टेस्टामेंट का अनुवाद जर्मन में किया। उनके अनुवाद के आधार पर जर्मन भाषा मानक रूप में स्थिर हुई। लूथर भावानुवाद के समर्थक थे। सम्प्रेषण और बोधगम्यता को अनुवाद का महत्त्वपूर्ण तत्व मानते थे।

5.2.3 पाश्चात्य अनुवाद चिंतन : आधुनिक युग

आधुनिक युगीन पाश्चात्य चिंतन

आधुनिक युग अर्थात् बीसवीं शताब्दी में अनुवाद का वास्तविक चिंतन हुआ। इसके पूर्व अनुवादक की परिधि प्रायः धार्मिक ग्रंथों तक थी। आधुनिक युग में अनुवाद व्यापक होकर संप्रेषण का सशक्त माध्यम बन गया है। बीसवीं शताब्दी में अनुवाद अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान से जुड़कर उसकी परिधि में आ गया है। अब मात्र शब्दानुवाद या भावानुवाद की बात नहीं है अपितु किसी भी प्रकार का सम्प्रेषण अनुवाद की सीमा में माना जाने लगा है। बीसवीं सदी के अनुवाद वैज्ञानिकों में प्रोचाजका, सेवरी, यूजेन नाइडा, कैटफोर्ड, पीटर न्यूमार्क आदि उल्लेखनीय हैं। आधुनिक युग में मशीनी अनुवाद भी शुरू हुआ है, और मशीनी अनुवाद पर विशेष चिंतन हो रहा है।

5.2.4 पाश्चात्य अनुवाद चिंतन

इसके पूर्व आप ने अनुवाद चिंतन की पाश्चात्य परंपरा से परिचय प्राप्त किया। अनुवाद चिंतन की पाश्चात्य परंपरा सुदीर्घ एवं सुदृढ़ है। इकाई के इस खण्ड में आप पश्चिम में विकसित अनुवाद के सिद्धांतों का अध्ययन करेंगे। आप जानते हैं कि सिद्धांत एकाएक नहीं बनते बल्कि धीरे-धीरे विकास क्रम में निर्मित होते हैं। सिद्धांत विकास कहीं संस्थाओं द्वारा तो कहीं व्यक्तियों द्वारा हो सकता है।

सिद्धांतों की निर्मित में एक बात और ध्यान देने योग्य है कि पहले लम्बे समय तक कोई कार्य व्यवहार रूप में होता रहता है और उसी व्यावहारिक कार्य से सिद्धांतों का उद्भव होता है। जैसे-पहले लक्ष्य ग्रंथ लिखे गये तत्पश्चात् लक्षण ग्रंथ निर्मित हुए किन्तु लक्षणों या सिद्धांतों के स्थित होने जाने पर उनका विनियोग प्रायः आवश्यक हो जाता है। अनुवाद के सिद्धांतों के संबंध में भी यही बात लागू होती है।

अनुवाद : प्राचीन पाश्चात्य सिद्धांत

प्राचीन यूनान में अनुवाद की व्यवस्थित परंपरा बाइबिल के अनुवादों से शुरू हुई। बाइबिल के अनुवाद में दो सिद्धांत लक्षित होते हैं।

i) अनुवाद का भाषा वैज्ञानिक सिद्धांत (Philological theory of translation)

ii) अनुवाद का प्रेरणात्मक सिद्धांत (Inspiratioanl theory of translation)

प्रथम सिद्धांत के अनुवाद अनुवादक को स्रोत और लक्ष्य दोनों भाषाओं का अच्छा ज्ञान होना चाहिए, जिससे वह सहज रूप में अनुवाद कर सके।

द्वितीय सिद्धांत की मान्यता है कि बाइबिल जैसे दिव्य ग्रंथ का अनुवाद केवल भाषा ज्ञान और विषय ज्ञान से संभव नहीं है, इस पवित्र कार्य को अनुवादक देवी प्रेरणा के वशीभूत होकर ही कर सकता है।

1. अनुवाद का मुख्य गुण मूल्य निष्ठता है, किन्तु उसे न तो अधिक मूल निष्ठ होना चाहिए और न अधिक मूल मुक्त।
2. अनुवाद को पढ़कर या सुनकर लक्ष्य भाषा-भाषियों पर वही प्रभाव पड़ना चाहिए जो स्रोत भाषा भाषियों पर पड़ता है।
3. अनुवादक को मूल रचनाकार से तादात्म्य स्थापित कर उसके भाव तथा शैली संबंधी मूल बिंदुओं को आत्मसात् करके लक्ष्य भाषा में लाना चाहिए।
4. अनुवादक को मूल पाठ के कथ्य और कथन शैली दोनों का यथासंभव अनुसरण करना चाहिए।

एडवर्ड फिट्ज जेराल्ड (Fitzgerald, 1809-1883) के सिद्धांत

फिट्जजेराल्ड को विशेष ख्याति उभर खैयाम की रूबाइयों के अनुवाद से मिली। यह मूल मुक्त अनुवाद के पक्षधर थे। उनके अनुवाद-सिद्धांत इस प्रकार हैं-

1. अनुवाद शब्द प्रति शब्द नहीं किया जाना चाहिए।
2. अनुवादक को अपनी रुचि के अनुसार मूल रचना की पुनर्रचना करनी चाहिए क्यों मरे शेर से जीवित कुत्ता कहीं अच्छा है। (The live dog is better than the dead lion. Better a live sparrow than a stuffed eagle.) शब्दानुवाद में मूल जैसी सरसता और जीवंतता नहीं होगी।
3. काव्यानुवाद में आवश्यकतानुसार एक से अधिक छंदों को एक में मिलाया जा सकता है।

बीसवीं शताब्दी में अनुवाद-चिंतन और अधिक गंभीरता से हुआ अब अनुवाद को अन्य सम्प्रेषण-माध्यमों की भांति एक माध्यम के रूप में स्वीकार किया जाता है। किसी भी प्रकार का संप्रेषण अनुवाद के अंतर्गत आता है। अनुवाद की प्रक्रिया में शब्दों, चिन्हों, प्रतीकों, ध्वनियों, विराम चिह्नों आदि की व्याख्या कर उन्हें डिकोड किया जाना चाहिए। इसी सदी के अनुवाद वैज्ञानिक ब्लादयीर प्रोचाजका ने अनुवाद का सैद्धांतिक चिंतन किया। उनके अनुवाद सिद्धांत इस प्रकार है-

ब्लादमीर प्रोचाजका के अनुवाद सिद्धांत

1. मूल के शब्दों को कथ्य और शैली दोनों दृष्टियों से समझना चाहिए।
2. अनुवादक को स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा के संरचनात्मक अंतर को भली-भांति समझ लेना चाहिए।
3. अनुवादक को मूल शैलीगत संरचनाओं की पुनर्रचना अनुवाद में करनी चाहिए।
4. मूल रचना के पाठकों पर रचना का जैसा प्रभाव पड़ा है वैसा ही प्रभाव अनूदित रचना का अपने पाठकों पर पड़ना चाहिए।

5.3 अनुवाद-सिद्धांत : भारतीय परंपरा

प्राचीन भारतीय चिंतन

प्राचीन भारत में पश्चिमी देशों की भांति अनुवाद कार्य की परम्परा उपलब्ध नहीं है। हिन्दी भाषा शास्त्री डॉ. भोलानाथ तिवारी इस तथ्य का विश्लेषण करते हुए तीन मुख्य कारण मानते हैं-

I. प्राचीन काल में साहित्य तथा ज्ञान-विज्ञान के जो प्रमुख क्षेत्र थे, उन सभी में भारत काफी आगे था, यही कारण है कि गणित, दर्शन, विषविद्या, आयुर्वेद, संगीत तथा नीतिकथा संबंधी अनेक भारतीय ग्रंथ विश्व की विभिन्न भाषाओं में अनूदित हुए। इस प्रकार भारत दाता था उसे आदाता बनने का अवसर अधिक नहीं मिला।

II. जिन कुछ क्षेत्रों में बाहर उसे नवीनता मिली उसे उसने अनुवाद के रूप में ग्रहणकर, सीख और समझकर आत्मसात् करने के पश्चात् अपने शब्दों में अपनी शैली में व्यक्त करने के उद्देश्य से पुर्नरचित किया। उदाहरण स्वरूप भारतीय ज्योतिष पर उसीरियन प्रभाव तथा रमल शास्त्र पर अरबों का प्रभाव और ज्यामिति पर यूनानी प्रभाव देखा जा सकता है। आत्मसातीकरण की यह वृति सर्वत्र रेखांकित की जा सकती है।

III. संभव है कुछ अनुवाद हुए भी हों और काल कवलित हो गये हों। संस्कृत से अनेक भाषाएं, प्रादुर्भूत और प्रभावित हुई। संस्कृत भाषा और इसका साहित्य इतना समृद्ध था कि इसमें अन्य भाषाओं से अनुवाद बहुत कम हुए और जो हुए भी उन्हें पूर्णतः अनुवाद नहीं कहा जा सकता है। ये अंतः भाषिक, अंतर भाषिक, और प्रतीकात्मक अनुवाद माने जा सकते हैं, जैसे संस्कृत काव्य का संस्कृत गद्य में रूपांतरण, वेदों की ऋचाओं का मौलिक संस्कृत में अनुवाद-अंतः भाषिक अनुवाद की कोटि में आते हैं।

संस्कृत नाटकों में पुरुष पात्र संस्कृत बोलते हैं किन्तु स्त्री, विदूषक, दास, श्रमिक आदि प्राकृत बोलते हैं। प्राकृत भी कई प्रकार की है। प्राकृत संवादों के साथ संस्कृत पाठ भी दिया जाता था। इसे संस्कृत छाया कहते हैं। इसे अंतर भाषिक अनुवाद के अंतर्गत रखा जा सकता है।

प्राकृत के अनेक ग्रंथों के छायानुवाद मिलते हैं। गुणाढय की 'वृहदकथा' जो मूलतः पैशाची प्राकृत की रचना है, संस्कृत में इसके कई अनुवाद हुए हैं। जो आज भी उपलब्ध हैं, यथा-बुद्धस्वामी कृत-'वृहत्कथाश्लोक संग्रह', क्षेमेन्द्र कृत 'वृहत्कथा मंजरी' और सोमदेव कृत कथा सरित्सागर।

गुप्त युग में संस्कृत-साहित्य बहुत अधिक समृद्ध हुआ। इस काल में संस्कृत में प्राकृत के प्रमुख ग्रंथों के अनुवाद हुए। जैन धर्म से संबंधित ग्रंथ विसंतिविंसिका, पंचसंग्रह, पंचास्तिकाय आदि के संस्कृत में अनुवाद हुए। महाराष्ट्री प्राकृत की सुप्रसिद्ध रचना 'गाहासत्तसई' (गाथासप्तशती) के संस्कृत तथा अन्य अनेक भाषाओं में अनुवाद हुए।

आधुनिक काल में भी संस्कृत में अनुवाद हो रहे हैं। बाइबिल के संस्कृत में कई अनुवाद हुए। संस्कृत 'पंचतंत्र' का अनुवाद विश्व की अनेक भाषाओं में हुआ है। भारत की पालिभाषा का साहित्य तो परिमाण में विपुल है किन्तु पालिभाषा में अनुवाद प्रायः नहीं हुए। वर्मा में पालि में 'धम्मपद' का मुक्तानुवाद हुआ। तिब्बती, जापानी आदि भाषाओं में 'धम्मपद' तथा अनय पालि ग्रंथों के अनुवाद की संभावना तो की जा सकती है, किन्तु अभी तक कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं हुए। आधुनिक काल में पालि ग्रंथों के अनुवाद बरमी, सिंहली, तिब्बती, चीनी, जापानी, अंग्रेजी आदि में हुए हैं।

आधुनिक युग में भारतीय भाषाओं में परस्पर अनुवाद कार्य शुरू हुआ। हिंदी में संस्कृत के अनक ग्रंथों जिनमें श्रीमद्भगवद्गीता, वाल्मीकि रामायण, भागवत्, विष्णुपुराण, हितोपदेश, चाणक्य नीति, भर्तृहरिकृत शतकत्रयम् आदि उल्लेखनीय है। इन ग्रंथों के अतिरिक्त वैद्यक के ग्रंथों का संस्कृत और फारसी के ग्रंथों से अनुवाद हुआ। इसी प्रकार ज्योतिष के अनेक ग्रंथों का हिन्दी में अनुवाद हुआ।

हिन्दी में संस्कृत के ललित साहित्य-काव्य नाटकों के अनुवाद विशेष रूप से हुए हैं। नाटक में प्रबोध चन्द्रोदय, हनुमन्नाटक, मुद्राराक्षस, मालतीमाधव, शकुंतला, उत्तररामचरित, कर्पूरमजरी, मच्छकटिक आदि के कई अनुवाद हुए। अनुवादकों में राजा लक्ष्मण सिंह (शकुंतला नाटक-1863 ई.) भारतेन्दु (रत्नावली, 1868 ई.) मुद्राराक्षस (1874 ई.)

इत्यादि। सीताराम भूप (नागानन्द 1897 ई., उत्तर रामचरित 1897 ई. मृच्छकटिक, 1898 आदि) सत्यनारायण कविरत्न (उत्तररामचरित 1913 ई.), मालतीमाधव 1917 ई. रांगेय राघव (मृच्छकटिक 1957ई., मुद्राराक्षस 1957ई.) आदि।

अंग्रेजी के नाटकों और काव्यग्रंथों के अनुवाद भी आधुनिक युग में हिंदी में बहुत अधिक हुए। श्रीधर पाठक ने 'हरमिट एकांतवासी योगी' (1866 ई.), 'डेजर्टेड विलेज'-ऊजड ग्राम-(1889 ई.), रामचन्द्र शुक्लः 'लाइट ऑफ एशिया-बुद्धरचित', (1922 ई.) बच्चन-'रुबाइयात उमर खैय्याम-मधुशाला' आदि।

हिंदी में मराठी, बंगला आदि भाषाओं में अनेक अनुवाद हुए, जो बहुत लोकप्रिय हुए। बंगला अनुवादकों में हंसकुमार तिवारी, और मराठी अनुवादकों में प्रभाकर माचवे उल्लेखनीय है।

हिंदी में ललित साहित्य के अतिरिक्त ज्ञान के अन्य अनुशासनों के अनुवाद अपेक्षाकृत कम हुए हैं। रामचंद्र वर्मा (राजनीति) वासुदेवशरण अग्रवाल (इतिहास) आदि इस दिशा में उल्लेखनीय है।

अनुवाद सिद्धांत : भारतीय चिंतन

अनुवाद की दृष्टि से पश्चिम की तरह भारतीय चिंतन सुदीर्घ और सुव्यवस्थित नहीं दिखलाई पड़ता। यहां भाष्य और टीका पद्धति विशेष रूप से प्रचलित थी। इसे व्याख्यात्मक अनुवाद कह सकते हैं। इसी प्रकार प्राकृत आदि के संस्कृत में छायानुवाद हुए हैं। प्राकृत में लिखित गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' के संस्कृत में कई अनुवाद हुए। महाराष्ट्री प्राकृत में रचित गाथा-सप्तशती (गाहासत्तसई) के संस्कृत तथा अन्य भाषाओं में अनुवाद हुए। संस्कृत का लोकप्रिय ग्रंथ 'पंचतंत्र' अनेक भाषाओं में अनूदित हुआ।

भारत में सोलहवीं शताब्दी से अनुवाद की परम्परा कुछ व्यवस्थित रूप में दृष्टिगत होती है। इस काल में हिन्दू धर्म के साहित्य के अतिरिक्त बौद्ध, जैन, इस्लाम धर्म के साहित्यों के भी अनुवाद हुए। हिंदी खड़ी बोली में 'भाषा योग वासिष्ट' का पहला अनुवाद माना जा सकता है, जिसे राम प्रसाद निरंजनी ने सं. 1768 में किया। सन् 1974 में सर विलियम जोन्स द्वारा स्थापित 'रायल एशियाटिक सोसाइटी' में अनुवाद कार्य प्रारम्भ हुआ। सन् 1751 मेंपं0 दौलतराय ने हरिषेणाचार्य के 'पद्मपुराण' का भावानुवाद किया।

भारतीय भाषाओं-विशेषतः हिंदी में अनुवाद कार्य को इसाई मिशनरियों ने बढ़ाया। सन् 1749 के लगभग विलियम केरे नामक पादरी ने 'न्यू टेस्टामेंट' का हिंदी अनुवाद किया। बाइबिल के इस अनुवाद के अतिरिक्त कुछ शिक्षोपयोगी पुस्तकों का भी अनुवाद उन्होंने किया।

भारत में अनुवाद-सिद्धांत की चर्चा उन लोगों ने की है जिन्होंने अनुवाद किए हैं। कुछ प्रसिद्ध साहित्यकारों ने अनुवाद के विषय में लिखा है, क्योंकि उन्होंने स्वयं अनुवाद कार्य भी किया है। ऐसे कुछ विद्वानों के अनुवाद-विषयक मत या सिद्धांत प्रस्तुत किए जा रहे हैं-

जगमोहन सिंह (1857-1999)

कालिदास के 'ऋतुसंहार' और 'मेघदूत' का ब्रजभाषा में अनुवाद करने के पश्चात् भूमिका-भाग में जगमोहन सिंह ने अपने सैद्धांतिक विचार दिए हैं-

(i) शब्दानुवाद की अपेक्षा भावानुवाद पर बल देना चाहिए।

(ii) अनुवाद का मूल जैसा प्रभाव होना चाहिए।

(iii) अनुवाद मूल रचना के समय और प्रकृति के अनुसार होना चाहिए।

महावीर प्रसाद द्विवेदी (1864-1938 ई.)

द्विवेदी ने स्वयं तो संस्कृत और अंग्रेजी ग्रंथों के अनुवाद किए, साथ ही अनेक साहित्यकारों और विद्वानों को अनुवाद के लिए प्रेरित भी किया। द्विवेदी जी के अनुवाद संबंधी मुख्य सिद्धांत हैं:

(i) अच्छा कवि ही अच्छा काव्यानुवाद कर सकता है।

(ii) शब्दानुवाद से भावानुवाद अच्छा होता है।

("भाव ही प्रधान हैं, शब्द-स्थापना गौण। शब्दों का प्रयोग तो केवल भाव प्रकट करने के लिए होता है।"

कुमारसंभव, भूमिका, पृ. 3)

(iii) अर्थ की स्पष्टता के लिए अनुवादक अपनी ओर से कुछ विस्तार भी कर सकता है।

श्रीधर पाठक (1859-1928)

पाठक जी ने संस्कृत और अंग्रेजी ग्रंथों के अनुवाद किए। उन्होंने अपने अनूदित ग्रंथों की भूमिकाओं में अपने अनुवाद संबंधी विचार भी व्यक्त किए हैं, जो इस प्रकार हैं:

(i) स्रोतभाषा की ऐसी सामग्री का जिसमें वहां की विशिष्ट संस्कृति से संबंधित विशेष बातें हो भिन्न संस्कृति में विकसित लक्ष्यभाषा में अनुवाद करना बहुत कठिन है।

(ii) अनुवादक को अपने अनुवाद के पाठकों को ध्यान में रखकर कुछ छोड़ने और कुछ जोड़ने का अधिकार होता है किंतु ऐसा करते हुए भी अनुवादक को मूल कथ्य को सुरक्षित रखना चाहिए

(iii) काव्यानुवाद मूल छंद में हो तो अधिक श्रेष्ठ होता है।

(भागवत के दशम स्कंध के 31वें अध्याय के अनुवाद 'श्रीगोपिका गीत' के मुख पृष्ठ पर उन्होंने लिखा है समश्लोकी स्वच्छंद छायानुवाद खड़ी बोली हिंदी में)

(iv) पंक्ति प्रति पंक्ति अनुवाद में त्रुटियों की अधिक संभावनाएं होती हैं।

रामचंद्र शुक्ल

आचार्य शुक्ल ने अंग्रेजी तथा बंगला से हिंदी में अनुवाद किए। उनकी कुछ भूमिकाओं में अनुवाद संबंधी चिंतन मिलता है, जिनके आधार पर सिद्धांत रूप में ये तथ्य स्पष्ट हैं:

(i) शुक्ल जी भावानुवाद के पक्षधर थे।

(ii) अनुवाद में स्रोतभाषा के प्रभावों से लक्ष्यभाषा को यथा संभव बचाना चाहिए।

(iii) अनुवाद की भाषा शैली में मूल जैसा सहज प्रवाह होना चाहिए।

(iv) अनुवाद में विषय से सम्बद्ध शब्दों के प्रयोग में सतर्कता रखनी चाहिए। शुक्ल जी 'लाइट ऑफ एशिया' (अर्नाल्ड) के अनुवाद 'बुद्धचरित' में लिखते हैं। 'शब्द बौद्ध शास्त्रों में व्यवहृत रखे गये हैं।'

(v) अनुवाद आवश्यकतानुसार मूलनिष्ठ और मूलमुक्त दोनों प्रकार के हो सकते हैं।

(vi) स्रोतभाषा में प्रयुक्त अलंकार जिन्हें लक्ष्यभाषा में उसी रूप में नहीं लाया जा सकता, उनमें कुछ परिवर्तन किया जा सकता है।

हरिवंशराय बच्चन

बच्चन जी साहित्यकार के साथ एक श्रेष्ठ अनुवादक भी थे। उनकी अनुवाद संबंधी मान्यताएं इस प्रकार हैं:

(i) अनुवाद में भाव की प्रधानता होनी चाहिए।

(ii) छंदबद्ध रचना का अनुवाद उसी छंद में होना चाहिए।

(iii) अनुवाद में संस्कृति आदि की दृष्टि से परिवर्तन उचित नहीं है।

5.4 अनुवाद-सिद्धांत : बौद्ध-चिंतन

5.4.1 बौद्ध साहित्य-परिचय

भगवान् बुद्ध ने जिस भाषा में अपने उपदेश किए थे, वह पालि नाम से प्रसिद्ध है। महात्मा बुद्ध के महापरिनिर्वाण के पश्चात् उनकी शिक्षाओं, उपदेशों और प्रवचनों को संगृहीत किया गया। यह संग्रहीत साहित्य 'त्रिपिटक' के नाम से प्रसिद्ध है। 'त्रिपिटिक का अर्थ है-तीन पिटक या पिटारियां-सुत्तपिटक, विनय पिटक और अभिधम्मपिटक बौद्ध साहित्य-संस्कृत और पालि दोनों भाषाओं में उपलब्ध होता है किन्तु पालि में लिखित बौद्ध साहित्य संस्कृत में प्राप्त बौद्ध साहित्य से अधिक प्राचीन है।

पालि का पिटक साहित्य बुद्ध के निर्माणकाल से लेकर प्रथम शताब्दी ई. पू. तक विकसित हुआ। इसके पश्चात् प्रथम शताब्दी ई.पू. से अनुपालि या अनुपिटक साहित्य का विकास हुआ।

बौद्ध साहित्य मुख्यतः पिटक साहित्य है, जिसका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है-

1. सुत्तपिटक

इसमें तर्क और संवादों के रूप में महात्मा बुद्ध के सिद्धांतों का संग्रह है। इस पिटक में पांच निकाय है-

(i) दीर्घ निकाय

इसमें तीन वर्ग हैं सीलक्खबंध (13 सुत्त) महावग्ग (10 सुत्त) और पातिक वग्ग (11 सुत्त)।

(ii) मज्झिम निकाय

इसमें मध्यम विस्तार के साथ 152 सुत्त है यह निकाय पन्द्रह वर्गों में विभक्त है। इस निकाय में बौद्ध संबंधी सर्वांगीण विवेचन हैं। तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, और धार्मिक स्थितियों के साथ चार आर्य सत्यों का विवेचन है। आत्मवाद का खण्डन और ध्यान की अनेक पद्धतियों का विवेचन इस निकाय में है।

(iii) संयुक्त निकाय

इस निकाय में दार्शनिक पद्धतियों का विश्लेषण है। इसमें छप्पन सुत्त तथा पांच वर्ग हैं।

(iv) अंगुत्तर निकाय

इस निकाय में अनेक धर्मों का विवेचन है। इसमें ग्यारह भाग (निपात) और दो हजार तीन सौ सुत्त है।

(v) सुद्दक निकाय

सुत्त पिटक का अंतिम भराग है। यह पद्यमय है। इसमें पन्द्रह ग्रंथों (पाठों) का संग्रह है। खुद्दक पाठ, धम्मपाठ, उदान पाठ, इतिकुन्तक, सुत्तनिपात, विमानवत्थु, पेतवत्थु, थेरगाथा, थेरीगाथा, जातक, निद्देस, पटिसम्भिदाभग्ग, अपादान, बुद्धवश, और चर्यापिटक।

2. विनय पिटक

इस पिटक में भिक्षु और भिक्षुणियों के जीवन को विनम्र और संयमी बनाने वाले सदाचार के 227 नियमों का संग्रह है। ऐसी मान्यता है कि इन नियमों की रचना स्वयं बुद्ध ने की थी। विनय पिटक में तीन भाग (ग्रंथ) हैं-(i) सुत्तविभंग (ii) खन्धक (iii) परिवार।

सुत्तविभंग के दो विभाग हैं।

(i) पाराजिक-इसमें चार धम्मों का उपदेश है, इसका संबंध धर्म बहिष्कार है।

पाच्चित्रिय- में 92 धम्मों का उपदेश है। इसमें प्रायश्चित का विवेचन है।

(ii) खन्धक

इसमें दो वर्ग है-महावग्ग और चुल्लवग्ग। महावग्ग में धर्म नियम, धर्माचार, संस्कारविधि, यात्रा एवं निवास के नियमों, भिक्षुओं के औषधियों और वेशभूषा आदि का विवेचन है। चुल्लवग्ग में बुद्ध का सम्पूर्ण जीवन, संगीतियों और विभिन्न विधानों का वर्णन है।

(iii) परिवार

विनय पिटक की शिक्षाओं का एक संक्षिप्त संस्करण है यह प्रश्नोत्तर शैली में है। इसमें भिक्षुओं की वेशभूषा, उपासना, भिक्षा आदि का विवेचन है।

3. अभिधम्म पिटक

यह पिटक बौद्ध धर्म के दार्शनिक पक्ष से संबंधित है। इस पिटक में सात ग्रंथ हैं- (i) धम्म संगणि (ii) विभंग (iii) धातुकथा (iv) पुग्गल पंजति (v) कथावत्थु (vi) यमक (vii) पट्ठान।

अनुपिटक साहित्य

पिटक साहित्य के अतिरिक्त अनुपिटक साहित्य भी है जिसकी रचना निरंतर होती रहती है।

बौद्ध साहित्य और अनुवाद

बौद्ध धर्म का भारत के बाहर भी व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ। बौद्ध-धर्म-साहित्य परिमाण में बहुत विशाल है। बौद्ध साहित्य का अनुवाद टीकाओं और अनुतीकाओं के रूप में अधिक हुआ है। अट्ठकथाओं (अर्थ कथाओं) का भी निर्माण हुआ। इन अट्ठथाओं में विनय पिटक आदि मूल ग्रंथों की टीका की गई है। बुद्धघोष, बुद्धदत्त धर्मपाल आदि प्रसिद्ध अर्थ कथाकार और टीकाकार थे।

बुद्धघोष का परवर्ती युग- बारहवीं शताब्दी से आधुनिक काल तक टीकाओं का युग है। इसे बौद्ध साहित्येतिहास में टीका-युग की संज्ञा दी जाती है। इन टीकाओं की संख्या बहुत अधिक है। बुद्धघोष की प्रमुख टीकाएं निम्नलिखित हैं। समन्तपसादिका (विनपपिटक की टीका), अट्ठातालिनी (पातिमोक्ख की टीका), सम्मोह विनोदिनी (विभंग की टीका) सुमंगल विलासिकी (दीर्घ निकाय की टीका), पपंचसूदनी (मज्झिम निकाय की टीका), सारत्थरपकासिनी (संयुक्त निकाय की टीका), मनोरथ पूरणी (अंगुत्तर निकाय की टीका), परमत्थजोतिका (खुद्दकपाठ की टीका)।

बुद्धदत्त कृत व्याख्याएं-टीकाएं निम्नलिखित हैं-

मधुरत्थ विलासनी (बुद्धवंस), विनयविविच्छय (विनयपिटक) अभिधम्मावतार (अभिधम्मपिटक) आदि।

धर्मपाल की टीकाएं निम्नलिखित हैं-परमत्थदीपनी, परमत्थमंजुसा आदि।

व्यापक संदर्भ में अन्तः भाषिक अनुवाद के अंतर्गत टीका और भाष्य भी आते हैं। इसमें एकही बात को उसी भाषा में कुछ दूसरी शैली में व्यक्त किया जाता है बौद्ध साहित्य की टीकाएं बुद्ध वचनों और उपदेशों को सहज बोधगम्य बनाने हेतु लिखी गई हैं।

त्रिपिटक साहित्य के अनुवादक

त्रिपिटक साहित्य के अनुवादकों में महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौशल्यायन, भिक्षु जगदीश कश्यप, भिक्षु धर्मरक्षित आदि उल्लेख्य हैं।

महापण्डित राहुल सांकृत्यापन ने 'धम्मपद' का अनुवाद किया। यह प्रथम बार भिक्षु प्रज्ञानन्द द्वारा बौद्ध महात्मा,

रिसालदार पार्क, लखनऊ से प्रकाशित हुआ। इस अनुवाद में संस्कृत छाया भी है। अनुवाद हिंदी में है किंतु पहले संस्कृत छाया (अनुवाद) है।

थेरी गाथा-अनुवाद सन् 1947 में हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद की पत्रिका 'हिंदुस्तानी' में छपा। यह पुस्तकाकार रूप में सन् 1950 में प्रकाशित हुआ। इसके अनुवादक डॉ. विमलकीर्ति हैं।

थेरगाथा- महापण्डित राहुल सांस्कृत्यायन ने थेरगाथा का अनुवाद किया। इसमें अनुवाद को सरल बनाने का भरसक प्रयत्न किया गया है। बौद्ध धर्म और दर्शन के पारिभाषिकों को पाद-टिप्पणी में स्पष्ट किया गया है।

दीर्घनिकाय- महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने दीर्घनिकाय का अनुवाद हिंदी में किया जो 1936 में बौद्ध महासभा, लखनऊ से प्रकाशित हुआ। राहुल जी ने विनय पिटक, मज्झिम निकाय का अनुवाद भी किया।

महापरिनिब्बान-सुत्त का अनुवाद सन् 1958 में भिक्षु धर्म रक्षित ने किया जो सारनाथ वाराणसी से प्रकाशित हुआ। सन् 1959 में 'धम्मपद' का अनुवाद भिक्षुरक्षित द्वारा किया जो मास्टर खेलाड़ीलाल संकटाप्रसाद संस्कृत पुस्तकालय, कचौड़ीगली, वाराणसी से छपा।

जातक कथाओं का अनुवाद

भदंत आनंद कौसल्यायन ने छः खण्डों में जातक कथाओं का अनुवाद सं. 2013 वि. (सन् 1956) में किया जो हिंदी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रकाशित किया गया। अनुवाद की भाषा सरल है। यह भावानुवाद है।

5.4.2 अनुवाद के बौद्ध-सिद्धांत

यों तो व्यवस्थित रूप में अनुवाद के बौद्ध-सिद्धांत निबद्ध नहीं हुए हैं किन्तु अनूदित ग्रंथों और उनके प्राक्कथनों-भूमिकाओं आदि से अनुवाद-सिद्धांतों पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है जिसे निम्नलिखित रूप में समझा जा सकता है।

I. अनुवाद बोधगम्य होना चाहिए।

II. अक्षरशः अनुवाद अनिवार्य नहीं है।

III. भावानुवाद, छायानुवाद और सारानुवाद को महत्त्व दिया गया है।

IV. पद्य का अनुवाद लक्ष्यभाषा में पद्य में किया जा सकता है।

V. बौद्ध धर्म और दर्शन के परिभाषिकों के पृथक रूप में अनुवाद किए जाएं ताकि कठिन पारिभाषिक बौद्धगम्य हो सकें।

VI. टीका, भाष्य और व्याख्या को भी अनुवाद के रूप में माना गया है।

5.5 प्रमुख अनुवाद-सिद्धांत

अब तक जो चर्चा हुई उसके आधार पर इन अनुवाद सिद्धांतों को रेखांकित किया जा सकता है।

(i) समतुल्यता का सिद्धांत

अनुवाद के सिद्धांतों में समतुल्यता का सिद्धांत महत्त्वपूर्ण है। कैटफोर्ड इस सिद्धांत के प्रवर्तक माने जाते हैं कैटफोर्ड मानते है कि स्रोत भाषा की पाठ्य सामग्री (Textual Material) को लक्ष्यभाषा की समतुल्य पाठ्य सामग्री द्वारा प्रतिस्थापित करना अनुवाद है।

अनुवाद के क्षेत्र में गंभीरता से विचार करते हुए यूजेन नाइडा ने समतुल्यता के सिद्धांत का प्रतिपादन किया है। नाइडा इस सिद्धांत में अर्थ और शैली दोनों की समतुल्यता पर बल देते हें। सूक्ष्मता से विचार करते हुए वे स्पष्ट करते हैं कि दो भिन्न भाषाओं में शत-प्रतिशत समतुल्यता संभव नहीं हो सकती, अतः अनुवाद में भी पूर्ण समतुल्यता नहीं हो सकती। अच्छा अनुवाद मूल के निकट हो सकता है ओर यह तभी सम्भव है ज़ब अनुवादक को स्रोतभाषा और लक्ष्य भाषा का अच्छा ज्ञान हो। समतुल्यता के लिए अनुवादक को अनूद्य विषय का पर्याप्त ज्ञान भी अपेक्षित है।

(ii) व्याख्या का सिद्धांत

पाश्चात्य और भारतीय दृष्टिकोण में अनुवाद को व्याख्या माना गया है। नायडा भी मानते हैं कि अनुवाद में कुछ न कुछ व्याख्या होती ही है। रोमन जैकबसन और जेम्स होम्स ने भी अनुवाद को व्याख्या माना है।

अनुवादक को कुछ अवसरों पर अनिवार्यतः व्याख्या का सहारा लेना पड़ता है। स्रोतभाषा की लोकोक्तियों, मुहावरों तथा स्थानीय उक्तियों, सामाजिक, सांस्कृतिक संदर्भों आदि का शाब्दिक अनुवाद संभव नहीं हो पाता, ऐसी स्थिति में अनुवादक को अनुवाद के लिए इस सिद्धांत का विनियोग करना पड़ता है। व्याख्यात्मक दृष्टि से अनुवाद करने पर लक्ष्यभाषा में ये बातें स्पष्ट और बोधगम्य हो जाती है। अनुवाद व्याख्या का रूप न ले, इसके लिए पाद टिप्पणी का प्रयोग भी किया जाता है। इस सिद्धांत की सबसे बड़ी सीमा यह है कि आवश्यकता से अधिक व्याख्या होने पर अनुवाद अपनी सार्थकता खो देता है। अतः अनुवादक को विशेष सावधान रहना चाहिए कि काव्य और तथ्य को स्पष्ट करने के लिए ही व्याख्या करें।

(iii) अर्थ-संप्रेषण का सिद्धांत

भाषा, संवाद और अनुवाद की सार्थकता अर्थ संप्रेषण में ही है। प्रायः सभी भाषा वैज्ञानिक और अनुवाद-चिंतक इस तथ्य से सहमत हैं कि अर्थ अनुवाद का प्रमुख तत्व है। अर्थ के संप्रेषित न होने पर अनुवाद निरर्थक हो जाता है। डॉ. जानसन का मत है कि अर्थ को बनाये रखते हुए किसी अन्य भाषा में अन्तरण करना अनुवाद है। अनुवादक को विशेष ध्यान रखना चाहिए कि अपनी सीमाओं में रहते हुए अर्थ संप्रेषण की दृष्टि से वह लेखक के निकट रहे। अनुवाद मूल के अनुरूप (छायावत्) होता है किन्तु मूल नहीं। वस्तुतः अनुवाद में कुछ जुड़ता और कुछ छूटता भी है क्योंकि अर्थ के स्तर पर शत-प्रतिशत अनुवाद संभव नहीं हो पाता है।

पीटर न्यूमार्क अनुवाद में अर्थ-संप्रेषण के महत्त्व को स्वीकार करते हुए मानते हैं कि अनुवाद में अर्थ की क्षति की संभावना बनी रहती है। क्योंकि अनुवाद करते समय अर्थ-विस्तार और अर्थ-संकोच की प्रक्रियाएं घटित होती रहती हैं। फिर भी सफल अनुवाद में अर्थ का अधिकाधिक अन्तरण उचितहै।

(iv) सांस्कृतिक संदर्भों के एकीकरण का सिद्धांत

इस सिद्धांत को सुप्रसिद्ध सामाजशास्त्री मैलिनोवस्की ने प्रस्तुत किया है। अनुवाद का सांस्कृतिक महत्त्व सर्वस्वीकृत है। अनुवाद को सांस्कृतिक-सेतु माना जाता है। प्रत्येक भाषा की अपनी संस्कृति होती है। सांस्कृतिक पक्ष से सम्बद्ध, अभिव्यक्तियों के अनुवाद में विशेष कठिनाई होती है। स्रोतभाषा और लक्ष्यभाषा के सांस्कृतिक संदर्भों को भलीभांति समझकर अनुवाद करना उपयुक्त होता है। मैलिनोवस्की मानते हैं कि अनुवाद सांस्कृतिक संदर्भों का एकीकरण है। इसी प्रकार काजा गांद्रे भी मानते हैं कि अनुवाद भाषाओं का अंतरण नहीं अपितु संस्कृतियों का अंतरण हैं।

5.6 सारांश

अनुवाद का सिद्धांत निरूपण यद्यपि 20वीं शताब्दी की महत्त्वपूर्ण घटना है किन्तु अनुवाद सम्बन्धी विवेचन सैंकड़ों वर्षों से हो रहे हैं। पश्चिम में इसकी सुदीर्घ परम्परा रही है। बाइबिल के अनुवादों के माध्यम से अनुवाद की प्रक्रिया, पद्धति और स्वरूप पर बहुत विचार हुआ है। भारत में भी अनुवाद की परम्परा से भी अनुवाद के अनेक सूत्र निःसृत हुए हैं। इस पूरे विवेचन से अनुवाद के कुछ सिद्धांतों को भी रेखांकित किया जा सकता है जिनमें प्रमुख है-समतुल्यता का सिद्धांत' व्याख्या का सिद्धांत, अर्थसंप्रेषण का सिद्धांत तथा सांस्कृतिक संदर्भों के एकीकरण का सिद्धांत।

5.7 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. प्रमुख अनुवाद सिद्धान्तों का परिचय दीजिए।
2. पाश्चात्य अनुवाद सिद्धान्तों का विवरण दीजिए।
3. भारतीय अनुवाद सिद्धान्तों पर विचार कीजिए।

5.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. तिवारी, भोलानाथ, *अनुवादकला,* दिल्ली, शब्दकार प्रकाशन।
2. तिवारी, भोलानाथ एवं बोरा, राजमल (संपा.) *अनुवाद क्या है?* नई दिल्ली, वाजी प्रकाशन।
3. Nida, Eugene 1941, *Towards a Science of Translating*, Leader, E.J. Brill.
4. खेमाजी, आनन्द प्रकाश एवं वेद प्रकाश (संपा.) 1964, *अनुवाद कलाः कुछ विचार,* दिल्ली, एस. चाँद एण्ड कम्पनी।
5. गोपीनाथ, जी, 1985, *अनुवाद : सिद्धान्त और प्रयोग,* इलाहबाद, लोकभारती प्रकाशन।
6. भाटिया, कैलाशचन्द्र, *अनुवाद कला : सिद्धान्त और प्रयोग,* दिल्ली, तक्षशिला प्रकाशन।

इकाई 6 अनुवाद के प्राचीन पाश्चात्य सिद्धांत

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 अनुवाद के सिद्धांत एवं अनुवाद

6.3 पश्चिम की आरंभिक अनुवाद परम्परा और दिशा निर्देश:

6.4 15 वीं तथा 16वी शती में अनुवाद सिद्धांत का प्रारंभ

6.5 16वीं शताब्दी

6.6 17वीं शताब्दी

6.7 18वीं शताब्दी

6.8 19वीं शताब्दी

6.9 सारांश

6.10 अभ्यास के लिए प्रश्न

6.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

6.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- पश्चिम एवं प्राचीन पश्चिमी अनुवाद के आरम्भ से परिचित हो सकेंगे
- आरंभ से लेकर 19वीं शताब्दी के अंत तक पश्चिम के विभिन्न अनुवाद सिद्धांतों को जान सकेंगे।
- पश्चिम में विभिन्न कालों में अनुवाद, अनुवादक और अनुवाद के सम्बन्ध में दिशा-निर्देशों की परिवर्तनशील अवधारणा से परिचित हो सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

इस भाग में हम अनुवाद के आरंभ से लेकर आधुनिक काल तक होने वाले विकास की चर्चा करेंगे। चूंकि अनुवाद के सिद्धांत अनुवाद की परिपाटियों से निकलते हैं इसलिए अनुवाद सिद्धांत का विकास काफी हद तक अनुवाद का इतिहास ही है, जिनमें विभिन्न कालों में किए गए अनुवाद कार्य भी शामिल हैं।

6.2 अनुवाद के सिद्धांत एवं अनुवाद

अनुवाद-अध्ययन के छात्र के रूप में आपके लिए यह जानना उचित होगा कि अनुवाद कार्य का चलन इसके एक विषय के रूप में स्थापित होने से बहुत पहले हो चुका था। जिसे हम 'अनुवाद-अध्ययन' कहते हैं, वह एन्द्रे लेफेयर (Andre Lefevere) द्वारा उनके 'लोवेन कोलोक्विवम ऑन लिटरेचर ऐंड ट्रांसलेशन' में 1978 ई. में संग्रहीत और 1976 में लिखे एक लेख के प्रकाशन के रूप में यह अनुवाद अध्ययन में 'अनुवाद के उत्पादन और विवरण द्वारा उठाई गई समस्याओं

से संबद्ध है। अनुवाद ने 'एक गौण कला और निगमित', 'एक यांत्रिक क्रिया' से विद्वतापूर्ण कार्य को मुख्य विशेषता मानने तथा नव्य आधुनिकता के आधार रूप तक एक लम्बा रास्ता तय किया है। जैसा कि निकोलस बरियो ने टेट आर्ट गैलरी, 2009 के अपने परआधुनिकता (Altermodernism) घोषणा-पत्र में निम्नलिखित रूप में कहा है।

"कलाकार एक आधुनिकता की ओर देख रहे हैं, जो अनुवाद पर आधारित होगीः आज सांस्कृतिक समूहों के सांस्कृतिक मूल्यों के अनुवाद और उन्हें वैश्विक सूत्र से जोड़ने की आवश्यकता है।" (2009)

"बीसवीं शताब्दी के आधुनिकतावाद के विपरीत, जो पश्चिमी उपनिवेश की मूर्त भाषा की बात करता है, और उत्तर-आधुनिकतावाद, जो कलात्मक क्रिया-कलापों को उत्पत्ति और पहचान की सीमा में बांधता है, यह आधुनिकता अनुवाद के नाम से जानी जाती है,।"

इसके परिणामस्वरूप अनुवादक की भूमिका और कार्य में भी परिवर्तन हुए। अब वह एक अदृश्य उपस्थिति (Shaddow Presense) और चर्च के ईशारों पर काम करने वाले व्यक्ति (A bagger at the church door) की भूमिकाओं से आगे बढ़कर एक सर्जक के रूप में पहचाना जाने लगा और अनुवादक का कार्य एक विद्वान और सर्जनात्मक लेखक के कार्य के समान महत्त्वपूर्ण माना जाने लगा।

वर्तमान शताब्दी में अनुवाद को मिली केन्द्रीयता के कारण यह जानना जरूरी हो गया है कि हम अनुवाद के विकास को जाने। संयोग से यह, मुख्यतया अंग्रेजी, यूरोप में अनुवाद सिद्धांत का इतिहास है, क्योंकि अंग्रेजी बौद्धिक आदान-प्रदान का माध्यम बनी, जिसने औपनिवेशिक तथा उत्तर औपनिवेशिक काल में अनुवाद को अधिग्रहण और ज्ञान एवं सूचना प्रसार के उपकरण के रूप में प्रयोग किया तथा स्वयं को समृद्ध किया। भारत जैसे देश में, जिसका संस्कृत के विद्वतजनों की रचना की भाषा के काल में भी बहुभाषी समाज होने का इतिहास रहा है, उसमें अनुवाद उस रूप में सजग व्यवस्थित कार्य के रूप में विकसित नहीं हुआ जिस तरह पश्चिम में हुआ जहां राष्ट्र/राज्य/संस्कृति ने अनुवाद की भूमिका संप्रेषण के उपकरण के रूप में अपेक्षित की। विभिन्न भारतीय चिन्तकों और अनुवादकों पर चर्चा अलग से की जायेगी।

6.3 पश्चिम की आरंभिक अनुवाद परम्परा और दिशा निर्देशः

16वीं शताब्दी में एतियन दोले (Etienne Dolet) द्वारा अनुवाद का सैद्धान्तिकरण सामने आया। जबकि, अनुवाद करने वालों ने ज्ञान का उपयोग या अनुकूलन (Appropriation) के लिए या धार्मिक उद्देश्यों (बाइबिल के अनुवाद के संदर्भ में) से अनुवाद के दिशा-निर्देश बनाए, जिसका उन्होंने अपने अनुवाद कार्यों में उपयोग किया। इस इकाई में पश्चिम के अनुवाद सिद्धांत के विकास और तीसरी शताब्दी से सोलहवीं शताब्दी के आरंभ तक की अनुवाद परंपराओं से निकल दिशा-निर्देशों के बारे में विचार किया जायेगा।

एरिक जैक्ब्सन (Eric Jacobson) के अनुसार अनुवाद 'एक रोमन आविष्कार' है। उनके पहले यूनानियों ने, ज्ञान के नए क्षेत्रों-तत्वमीमांसा, नीतिशास्त्र, सौन्दर्यशास्त्र, राजनीतिशास्त्र और काव्यशास्त्र-और अन्य विषयों से अनुवाद को जोड़ा जो स्वयं भौतिक अस्तित्व और तत्व मीमांसा एक हुए उन्होंने अनुवाद की आवश्यकता नहीं अनुभव की, क्योंकि वे रोम की तरह द्विभाषावाद या त्रिभाषावाद से मतलब नहीं रखते थे। रोम वालों ने यूनानियों की दार्शनिक स्पष्टता की गहराई और कल्पनात्मक क्रियाशीलता को समझ लिया था। वे इतने व्यवहारिक थे कि उन्होंने यूनान के ज्ञान का अनुवाद कर लिया जिससे कि वे उस ज्ञान को प्राप्त कर सकें और उससे ऊपर सोचकर अपना योग दे सकें। उन्होंने विधि-शास्त्र और शासन-प्रणाली पर अधिक जोर दिया, जो जस्टिनियन के इंस्टीट्यूट्स में देखा जा सकता है। प्रमुख रोमनों में होरेस (Horace) और सिसेरो (cicero) थे, जिन्होंने अपने विमर्शों में अनुवाद पर चर्चा की। होरेस ने 'आर्ट ऑफ पोएट्री' में अनुवाद के कुछ दिशा निर्देशों का उल्लेख किया है।

एक कथ्य जिससे हम परिचित हैं उसे वहां तक अपना बनाया जा सकता है जहां तक हम अपना समय आयातित उपायों में बर्बाद नहीं करते। हमें न तो गुलाम अनुवादक की तरह शब्दशः अनुवाद करना चाहिए, न ही दूसरे लेखक की नकल कर खुद को परेशानी में फंसना चाहिए, या अपने लिए शर्मिंदगी पैदा करनी चाहिए और न ही स्वयं के बनाए हुए नियम में उलझकर अक्षम होना चाहिए।

यहां पर होरेस (Horace) सलाह देते हें कि अनुवाद का उपयोग मातृभाषा को समृद्ध बनाने हेतु करना चाहिए। इसी तरह सिसेरो (Cicero) डे आप्टिमो जॉनर ओरेट्रम में दो प्रकार के अनुवाद की बात करते हैं और दोनों में विभेद करते हुए 'शब्द के लिए शब्द' के स्थान पर 'भाव के लिए भाव' के अनुवाद की वकालत करते हैं। वे कहते हैं "यदि मैं शब्द के लिए शब्द रखता हूं तो परिणाम भद्दा होगा और यदि आवश्यकता पड़ने पर शब्दों के क्रम या शब्दों में परिवर्तन हेतु विवश होता हूं तो मैं अनुवादक के कार्य से अलग हुआ प्रतीत होउँगा।" यहां वे बताते हैं कि अनुवादक को दोनों के बीच एक बारीक संतुलन बनाए रखना होता है। रोम वालों ने अनुवाद का उपयोग मातृभाषा एवं साहित्य को नए शब्द गढ़कर अथवा उधार लेकर समृद्ध बनाने हेतु किया ओर यह सुझाव दिया कि अनुवाद किसी भाषा के भीतर एक नव उपभाषिक प्रणाली को जन्म देता है। साथ ही होरेस (Horace) जैसे रोमन विद्वान 'अक्षरशः' अनुवाद के खतरों से पूर्णतया सजग थे तथा उन्होंने सक्षम भाषा में अनुवाद से पूर्व स्रोत भाषा की तार्किक व्याख्या की सलाह दी। अनुवादक लक्ष्य भाषा के पाठकों के प्रति उत्तरदायी था जो अधिकतर स्रोतभाषा को भी जानते थे। जैसा कि सूसेन बेसनेट (Susan Bassnett) ने रोमन पाठकों के बारे में कहा है, "रोमन पाठक सामान्यतया अनुवाद को मूल पाठ से जांचने में समर्थ था। इस बात से इतर कि एकभाषी पाठक स्रोतभाषा तक केवल अनुवाद के माध्यम से पहुंच सकता है, अनूदित रचना मूल पाठ के माध्यम से पढ़ी जाती थी।"

रोमन साम्राज्य के क्रमिक पतन के और यूरोप में इसाईयत के प्रसार के साथ मध्य युग (बाइबिल के अनुवादकों से जुड़ा) ने अनुवाद के इतिहास, सिद्धांत और चलन को एक नई दिशा दी, जिसका उद्देश्य ईश्वर के वचनों का प्रसार था। 384ई. में पोप डेमेसस (Pope Domasus) ने बाइबिल के अनुवाद का कार्य आरंभ किया और 17वीं शताब्दी, 1607 ई. में सम्राट जेम्स ने बाईबिल के प्रामाणिक पाठ का कार्य आरंभ करवाया, जो 47 विद्वानों द्वारा 1611 ई. में पूरा कर लिया गया। इन दोनों घटनाओं के बीच संत जेरोम (St. Jerom's) के विवादित संस्करणों के साथ बाईबिल के अनुवाद में अभूतपूर्व रुचि देखी गई। ऑक्सफोर्ड के एक धर्मशास्त्री जॉन विक्लिफ (John Wycliffe) (1330-1384) ने 'दया के प्रभुत्व' के सिद्धांत को स्वीकारा तथा उसका अनुमोदन किया और सम्पूर्ण बाईबिल का प्रथम अनुवाद प्रस्तुत किया। इसके अनुसार मनुष्य ईश्वर और उसके नियमों के प्रति उत्तरदायी है, जैसा कि बाइबिल में वर्णित है। उनके अनुसार बाइबिल जीवन के सभी पक्षों पर प्रकाश डालता है और इसमें जीवन के निर्देशात्मक सिद्धांत हैं, अतः सभी मनुष्यों को ईश्वर के वचनों को बाइबिल में अपनी भाषा में देखना चाहिए, जिससे वे इसे समझ सकें। (John Purvey), (Wcliffe) के शिष्य जॉन पर्वी (John Purvey) ने प्रथम संस्करण का संशोधित रूप 1408 में प्रस्तुत किया।

विक्लिफ (Wycliffe) के द्वितीय बाइबिल अनुवाद में अंग्रेजी में एक सामान्य आमुख है, जिसे 1395 तथा 1396 के बीच लिखा गया है। पाठ-15 अनुवाद प्रक्रिया के चार चरणों को विवेचित करता है:

1. पुरानी बाइबिल संग्रह, टिप्पणियों और एक अधिकारिक लैटिन स्रोत पाठ सुनिश्चित करने में एक सामूहिक प्रयास।
2. विभिन्न संस्करणों की तुलनाः
3. 'पुराने वैयाकरणों और 'प्राचीन दैवीकीन' और शब्दों व जटिल अर्थों के साथ तालमेल; तथा
4. 'वाक्यों' का यथा संभव अनुवाद, साथ ही सहकर्ताओं द्वारा अनुवाद की जांच।

अनुवाद के चरणों के बारे में प्रथम मुख्य कथन में एक प्रमुख तथ्य निहित है, जिसकी आज के अनुवाद में आवश्यकता नहीं है। बाइबिल के अनुवादकों को लैटिन के आधिकाकि स्रोत पाठ को तुलनात्मक ढंग से जुटाना, तैयार करना पडा। इसके बाद इसे जन वैयाकरणों और धर्मशास्त्रियों जो स्रोत पाठ और जटिल शब्दों के अर्थ मानते थे, से समझना, स्पष्ट अनुवाद अर्थ हेतु वाक्यों पर केन्द्रित था। बाइबिल के अनुवाद का सबसे प्रमुख पहलू था उनका सहयोगी प्रयास जो इसको सुधार सकते थे। इस प्रकार अनुवाद का यह कार्य सहयोग की प्रयोगशाला थी। आगे, इसने यह विवाद भी छेड़ दिया, जो आज भी जारी है, कि अनुवाद की इकाई क्या होनी चाहिए-शब्द या वाक्य। जॉन पर्वी (John Purvey) शब्द के स्थान पर वाक्य (अर्थ) का महत्त्व देते हैं क्योंकि उनका उद्देश्य 'समझ बोधपरक' था जिससे एक साधारण व्यक्ति भी पाठ को समझ सके। छापेखाने के प्रादुर्भाव और विलयम टिंडेल (Willian Tyndale) 1494-1536 ने बाइबिल के अनुवाद को एक नई दिशा दी, जिन्होंने न्यू टेस्टामेंट को ग्रीक से ओल्ड टेस्टामेंट को हिब्रू से अंग्रेजी में अनुवाद किया

में लोकभाषा में अनुवाद। क्षैतिज अनुवाद में दोनों भाषाओं-जैसे; नार्मन फ्रेंच से अंग्रेजी या प्रोवेंकल से इटेलियन-का समान रूप से महत्त्व था।

6.4 15वीं तथा 16वीं शती में अनुवाद सिद्धांत का प्रारंभ

16वीं शताब्दी से पूर्व 1500 वर्षों के अनुवाद की यूरोपीय गतिविधि पर दृष्टिपात इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि अनुवाद यूरोप केन्द्रित गतिविधि थी। कुछ अनुवादकों ने कुछ दिशा-निर्देश बनाए परंतु उसे सिद्धांत नहीं कह सकते, क्योंकि सिद्धांत तत्कालीन प्रचलित प्रणाली में परिवर्तन कारक होते हैं-चाहे वह साहित्यिक सिद्धांत हो या अनुवाद सिद्धांत। सिद्धांत प्रायः प्रचलित परम्पराओं के परवर्ती होते हैं और विभिन्न सिद्धांत परम्पराओं से निगमित होते हैं। उदाहरणतः भरतमुनि का *नाट्यशास्त्र* और भामह का *काव्यशास्त्र* संस्कृत नाटक और महाकाव्य आदि अन्य कला व काव्य रूपों के प्रचलन के बाद रचे गये। उसी प्रकार पश्चिम में अरस्तू की *पोयटिक्स* भी शास्त्रीय ग्रीक काव्य और नाटक के आधार पर लिखी गई। यद्यपि अनुवाद के साथ-साथ कई नए विषयों पर भी विचार हुआ, परन्तु विक्लिफ (Wycliffe) के अनुवाद के चरणों के अतिरिक्त इस काल में अन्य सिद्धांत सामने नहीं आए। 15वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में छापेखाने की तकनीक के आविष्कार से अनुवाद के क्षेत्र में एक नई तेजी आई।

6.5 16वीं शताब्दी

पुरूष सिद्धांत के क्षेत्र में, मुख्यतया अनुवाद के क्षेत्र में, यह एक रोचक तथ्य है कि एक फ्रांसीसी मानववादी एतिन दोले (Eitenne Dolet) (1509-1546) को प्रथम अनुवाद सिद्धांत का प्रवर्तक माना जाता है। 1540 के अपने एक छोटे से फ्रांसीसी लेख में, जिसका अंग्रेजी अनुवाद "एक भाषा से दूसरी भाषा में ठीक से कैसे अनुवाद करें" के रूप में हुआ, उन्होंने एक अनुवादक के लिए 5 सिद्धांत स्थापित किये।

अनुवादक को मूल लेखक का अर्थ और अभिप्राय पूरी तरह से समझना चाहिए, यद्यपि वह अस्पष्टताओं को स्पष्ट करने हेतु स्वतंत्र है। अनुवादक को स्रोत-भाषा एवं लक्ष्य भाषा, दोनों का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए।

अनुवादक को अक्षरशः अनुवाद से बचना चाहिए।

अनुवादक को सामान्य लोकभाषा का प्रयोग करना चाहिए।

अनुवादक को शब्दों का उपयुक्त चयन करना चाहिए।

अपने पूर्ववर्तियों जैसे ट्रेसा (Trevisa) के जॉन की तरह दोले (Dolet) ने स्रोत-पाठ की समझ को महत्त्व दिया है। उन्होंने स्रोत-भाषा एवं लक्ष्य-भाषा, दोनों के 'पूर्ण ज्ञान' पर बल दिया है। कम से कम अब तथा कथित पूर्ण ज्ञान एक कपोल कल्पना है। वे शब्द के लिए शब्द और भाव के लिए भाव सम्बन्धी बहस के बारे में जानते थे उन्होंने परामर्श दिया कि एक अनुवादक को शब्द के स्थान पर भाव को महत्त्व देना चाहिए। परंतु उन्होंने भाव के मूल शब्द की स्थिति को नहीं नकारा है। फिर भी उन्होंने शब्द के लिए शब्द के अनुवाद (शाब्दिक अनुवाद) से बचने को कहा है। एक प्रकार से उन्होंने अनुवादक का मध्यमार्ग अपनाने को कहा है। चौथे एवं पांचवें सिद्धांत में वे लक्ष्य भाषा में अनुवाद के प्रवाह के साथ समझ की बात करते है, जिसके लिए वे सामान्य भाषा से उपयुक्त शब्दों के चयन की बात करते है। सही परिप्रेक्ष्य के साथ अनुवाद पर उनका ध्यान स्रोत-भाषा के सभी तत्वों की एकता के प्रभाव पर है, जो लक्ष्य-भाषा में परिलक्षित होती है। उनका कथन अनुवाद को भाषिक चीरफाड़ और संगत शब्दों के खोज के यांत्रिक अभ्यास के अधिक ऊपर की वस्तु बताता है।

दोले ने अपने उत्तरवर्ती अनुवादकों को प्रभावित किया। जार्ज चैपमैन (1559-1634) ऐसे ही एक दोले के उत्तरवर्ती अनुवादक थे, जिन्होंनेहोमर का अंग्रेजी में अनुवाद किया। उन्होंने अपनी पुस्तक The seven books (1598) के अपने समर्पण में दोले को याद किया और उन्होंनें अपने शब्दों में अनुवाद के सिद्धांत की व्याख्या की जो उनके अनुवादों में भी दिखाई देता है। उनके अनुसार एक कुशल और योग्य अनुवादक का कार्य है, कि मूल लेखक के वाक्यों और रचना विन्यास तथा व्याकरण का सूक्ष्म पर्यवेक्षण करे और उसके मूल आशय और संभावनाओं को समझे। उसके पश्चात् उसी

भाषा में उसी मुहावरे एवं अभिव्यक्ति शैली में उसका अनुवाद करे जिस तरह से वे मूल रूप में लिखे गये हैं। वह अनुवद के अपने सिद्धांत या सिद्धांतों की व्याख्या इलियड के अनुवाद में Epistle to the Reader में इस तरह की:

शब्दशः अनुवाद से बचना

मूल की आत्मा (Spirit) तक पहुंचने का प्रयास करना,

बहुत विद्वतापूर्ण ढंग से खोजबीन करके समानार्थक शब्दों और वाक्यांशों पर आधारित बहुंत ही मुक्त (overlass) अनुवाद से बचना।

चैपमैन अब शब्द के बजाय एक ज्यादा व्यापक इकाई शब्दों अर्थात् वाक्य की ओर ध्यान आकर्षित करता है, किन्तु वाक्य भी शब्दों की अर्थपूर्ण संगति से अधिक कुछ नहीं। एक 'योग्य' और 'कुशल' अनुवादक के गुण हैं कि वह मूल भाषा में अभिव्यक्ति के रूप, संरचना एवं वाक्यों को ध्यानपूर्वक देखें और वह इसमें सक्षम हो सके कि स्रोत-भाषा में लिखित साहित्य के मूल अर्थ एवं उदात्त को समझ सके क्योंकि तभी वह उसे लक्ष्य भाषा में रूपांतरित कर सकेगा। इसके अतिरिक्त वह अनुवाद को एक विद्वतापूर्ण कार्य मान कर अनुवाद कार्य को एक नई दिशा देता है, और उसे दूसरे रूपों एवं शब्दों की गहन एवं विद्वतापूर्ण खोज के साथ जोड़ देता है, जो अच्छे या श्रेष्ठ अनुवाद के सिद्धांतों में हो जाता है। यद्यपि 'आत्मा' अभी भी एक अस्पष्ट शब्द ही बना रहता है, तथापि दोले के सही टोन (The correct Tone) के साथ इसकी समांतरता स्थापित की जा सकती है, अथवा इसे तत्वमीमांसक अस्तित्व की परिभाषा में लक्ष्य भाषा के अंतर्गत रखा जा सकता है, जो अनुवाद की तकनीक या कौशल से परे होती है।

16वीं शताब्दी अनुवादों और उनके द्वारा उत्पन्न प्रकरणों की शताब्दी बनी रही। दोले (Dolet) और उस काल के अनुवादकों के प्रभाव की चर्चा करते हुए एडमंड केरी (Edmind Carey) ने बताया है कि अनुवाद युद्ध का रोष पूरे दोले काल तक रहा, और यह जीवन के विभिन्न अवयवों में प्रविष्ट रहा। उसकाल में अनुवाद 'राज्य और धर्म का विषय बन गया'। उस काल में सारबोन और राजा इससे समान रूप से संबंधित थे। जैसा कि जोकिम डू बेले (Joachim do Bellay) का *Defence et illustratiaon de la Language francaise* अनुवाद से संबंधित समस्याओं पर आधारित है, उसी प्रकार उन्होंने बताया है कि कवि और गद्य-लेखकों में इस मुद्दे पर खूब बहस हुई।

उस काल में नार्थ (North), ने अपने 1579 के प्लूटार्क (Plutarch) के अनुवाद में प्लूटार्क के अप्रत्यक्ष तरीके को ऐसे तरीके में परिवर्तित किया, जिसमें उसने शीघ्रता और शुद्धता और उस समय की प्रयुक्त भाषा को इच्छानुसार प्रयोग किया। याट (Wyatt) के द्वारा पेट्रार्क के लघु काव्य (Sonnet) के अनुवाद ने (1503-43) अंग्रेजी में पेट्रार्कियन लघु काव्य को जन्म दिया। इस प्रकार अंग्रेजी में उपस्थित पैमाने और स्वरूप में अनुवाद नई रीति को जन्म देने का कारण बन गया। फिलोमेन हॉलैंड (Philomen Holland) (1522-1632) (जिसको 'महानुवादक' नाम से विभूषित किया जाता है) ने लिवि को लैटिन में अंग्रेजी में अनूदित किया। उसकी टिप्पणी इस अर्थ में महत्त्वपूर्ण है कि उसने चाहा कि उसका लिवि अनुवाद 'अंग्रेजी में उसके मस्तिष्क को दर्शाए'। कुछ अंश तक वह अभिव्यक्ति के संदर्भ में समझौते के लिए इच्छुक था, लेकिन उसने उसे उतना ही सत्य रखना चाहा जितना कि वह लैटिन में था, साथ ही साथ उसने किसी प्रभावित रीति का प्रयोग करने के स्थान पर 'अर्थपूर्ण और प्रचलित' का अनुसरण किया। एक प्रकार से उसने कहा कि एक अच्छा अनुवादक विचार स्रोत को निर्धारित विषय में रखे, और ऐसी रीति का प्रयोग करे जो मध्यम हो-न तो अत्यधिक जटिल और न ही अधिक सरल। उसने 'अश्लीलता' के आरोपों पर ध्यान नहीं दिया, जैसाकि उसने प्लीनी (Pliny) के अंग्रेजी अनुवाद में किया। इन आरोपों के बीच में अनुवाद उस काल के लोगों की कल्पना को आकार और दिशा देता रहा। जैसा कि जार्ज स्टेनर (George Stainer) ने बताया कि उस काल में अनुवाद 'भूत और भविष्य' और विभिन्न भाषाओं तथा उन परंपराओं के मध्य संबंध स्थापित करने का साधन बन गया, जो राष्ट्रवाद और धार्मिक विवादों के दबाव में टूट रहे थे।

6.6 17वीं शताब्दी

17वीं शताब्दी के मध्य इंग्लैंड में राजनीतिक उथल-पुथल और राजतंत्र की पुनर्स्थापना तथा चार्ल्स द्वितीय, (जो फ्रांस में रह रहा था) का इंग्लैंड में वापस आना, आदि घटनाओं में नव-शास्त्रीयवाद को जन्म दिया, जो एक प्रकार से शास्त्रीय

प्रारूपों का व्यवहार में अवतरण था। 1625 और 1660 के मध्य का काल फ्रांसीसी शास्त्रीयवाद का काल था तथा शास्त्रीय सिद्धांतों और मानकों के अनुरूप नाटक लेखन प्रचलन में था। चार्ल्स द्वितीय के वापस आने के साथ शास्त्रीय सिद्धांत में ढलने वाले पात्र में फ्रांसीसी और अंग्रेजी कला का सामान्य रूप में तथा नाट का विशेष रूप में तुलना और उस पर विमर्श सामान्य बात थी। जॉन ड्राइडेन (John Dryden) (1631-1700) इसकी अपने *एसे ऑफ ड्रामेटिक पोयट्री* में नाटक के संदर्भ में चर्चा की। संयोगवश ड्राइडेन इस शताब्दी का एक मुख्य अनुवाद सिद्धांतशास्त्री था, जिसने निम्नलिखित रीति से पहली बार अंग्रेजी में ओविड के *एपिस्टल्स* के प्रस्तावना (1680) में अनुवादों का वर्गीकरण किया। अक्षरशः अनुवाद (metaphrase), या एक लेखक का शब्दशः और पंक्तिशः एक भाषा से दूसरे भाषा में, अनुवाद।

विस्तृत व्याख्या (parephrase), या विस्तारपूर्वक व्याख्या, सिसेरो के 'भाव के लिए भाव' का दृष्टिकोण, का अनुवाद।

अनुकरण (imitation), जहां पर अनुवादक उपयुक्तता के अनुसार मूल विषय को त्याग सकता है।

ड्राइडेन (Dryden) अनुवादक को एक चित्रकार समझता है। जिस प्रकार एक चित्रकार अपने चित्र को मूल की तरह बनाना चाहता है, उसी प्रकार एक अनुवादक को चाहिए कि वह लक्ष्य-पाठ को ऐसा बनाए कि वह स्रोत-पाठ की तरह लगे। उसे चाहिए कि वह मूल रचनाकार की आत्मा और विशेषताओं को समझे ओर अपने काल को सौन्दर्य बोधीय उपकरणों/तत्वों काप्रयोग करे। इन बातों को एक संतुलित अनुवादक का मस्तिष्क में रखना चाहिए और ड्राइडेन (Dryden) द्वारा बताए गए तीन प्रकार के अनुवादों में से दूसरे प्रकार का अनुसरण करना चाहिए।

यहां पर हमें ड्राइडेन के दो पूर्ववतियों को ध्यान देना होगा। सर जॉन डेन्हम (1615-1669) ने अपनी कविता *"To Sir Richard Fanshaw upon his translation of Pastor Fido"* (1648) *'The destruction of Troy* (1656)' में अपने अनुवाद की प्रस्तावना में अनुवाद के सिद्धांत को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है। उन्होंने स्वरूप और आत्मबोधीय रूप में कला और कार्य की प्रकृति पर चर्चा की। कविता के अनुवाद में उन्होंने साहित्यिक अनुवाद के सिद्धांतों के प्रयोग के विरुद्ध सावधान किया। उनके अनुसार अनुवादक का यह कार्य नहीं है कि वह भाषा का भाषा में अनुवाद करे, बल्कि *'Posies into posies'* या कविता का कविता में अनुवाद करे। उनके अनुसार आत्मा इतनी सूक्ष्म है कि एक भाषा से दूसरी भाषा में डालने से यह वाष्पीकृत होगी या फैलेगी। अनुवादक को चाहिए कि वह मूल विषय से आत्मा या केन्द्र को पकड़े और उसे अभीष्ट विषय में स्थानान्तरित या पुनः रचित करे। उन्होंने पहली बार यह कहा कि मूल लेखक और अनुवादक एक ही स्तर पर हैं। डेन्हम (Denham) के समकालीन अब्राहम काडले (Abraham Cowdley) (1618-1667) ने अनुवाद के एक नवीन स्वरूप को जोड़ा जो बाद में 'स्वतंत्र विचार वाला' अनुवाद नाम से जाना गया। उन्होंने स्वयं अपने आपको एक अनुवादक स्वीकार किया और यह बताने में संकोच नहीं किया कि उन्होंने अपने अनुवाद में बहुत छूट ली है, जो किसी भी अनुवाद द्वारा प्रयोग किया जा सकता है। अपने *Pindarique Odes* (1656) की प्रस्तावना में उन्होंने बताया कि बिना मूल लेखक के बोलने के तरीके और मार्ग के बारे में व्यग्र होते हुए उन्होंने 'मनचाहा प्रयोग किया, छोड़ा और जोड़ा'।

6.7 18वीं शताब्दी

एक नवशास्त्रवादी होते हुए अलेक्जेंडर पोप (Alexander Pope) (1688-1744) 17वीं और 18वीं शताब्दी के मध्य एक कड़ी थे। उन्होंने शेक्सपीयर का 'अनुवाद नवशास्त्रीयकृत रूप में नाटकों को पुनर्रचित करके किया। उन्होंने शास्त्रीय कार्यों का अनुवाद इस प्रकार किया जो अनुवाद में अनुसरण किए जा सकते हैं। नव शास्त्रविदों ने शास्त्रीय लेखकों ओर उनके कार्यों को प्रारूपवत अनुसरण करने पर बल दिया। इसके परिणामस्वरूप अनुवादक का एक अनुसरणकर्ता समझ कर अनुवाद के संप्रत्यय में अनुसरण के सिद्धांत को प्रवर्तित किया गया। इस संप्रत्यय में नैतिक तत्व निहित हैं। यह अनुवादक का नैतिक कर्तव्य समझा गया कि वह मूल विषय और अभीष्ट विषय के प्रति अपने अपने कर्तव्य हेतु सजग हो। अनुवादक के अनुसरण कर्ता होने की धारणा को एक रंगकर्मी के प्रकरण में अक्षरशः अनुवादक के रूप में देखा गया। *Life of Pope (1779-1780)* में अंग्रेजी साहित्य के विद्वान सैमुअल जॉनसन (Samuel Johnson) ने अनुवाद द्वारा पाठ में प्रक्षेप (वृद्धि) के विषय पर चर्चा की, जो इच्छित है और इस प्रकार करने से सौंदर्य बढ़ता है और प्रक्रिया में कुछ भी नष्ट नहीं होता। उन्होंने अनुवाद परिचर्चा को अतनिष्ठा अनुवाद की स्वतंत्रता

के प्रश्न से दूर किया। 'अनुवाद सिद्धांत' *'Principles of Translation'* अनुवाद की पहली पुस्तक को लिखने का श्रेय अलेक्जेंडर फ्रेजर टाइलर (Alexander Fraser Tyler) को जाता है। उन्होंने अनुवाद के तीन प्रमुख सिद्धांतों की चर्चा की है-

1. अनुवादक को मूल कार्य के दृष्टिकोण को पूर्णतया व्यक्त करना चाहिए।
2. लिखने का आचरण और रीति मूल के चरित्र जैसा होना चाहिए।
3. अनुवाद में मूल साहित्य रचना की समस्त सरलताएं होनी चाहिए।

टाइलर (Tylor) का स्रोतपाठ के पूर्ण प्रतिलेखन और उसका लक्ष्य भाषा में स्थानांतरण और लक्ष्य पाठ में रीति, आचरण और सरलता के स्थानांतरण पर बल देना, ड्राइडेन (Dryden) के 'विस्तृत व्याख्या'या विस्तार से अनुवाद करने के प्रारूप के विरुद्ध प्रतिक्रिया थी। उन्होंने 'अपने लेखक के विशेष आत्मा को ग्रहण करने, जो अपने अंगों से बोल सके या व्यक्त कर सके' में अनुवादक की भूमिका पर बल दिया। अनुवाद 'अनुकूलन' नहीं है बल्कि स्रोत-पाठ और उसके अंश की आत्मा को लक्ष्य पाठ में 'ग्रहण करना' भी है।

उस काल में जर्मनी ने अनुवाद में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। गोथे (Goethe) (1749-1832) ने देखा कि प्रत्येक साहित्य अनुवाद की तीन स्थितियों से गुजर रहा है, जो कुछ प्रकरणों में बार-बार होता है। पहली स्थिति देशवासियों का विदेश से परिचित होना है। गोथे (Goethe) ने अपने मस्तिष्क में, मार्टिन लूथर (Martin Luther) द्वारा जर्मन बाइबिल का अनुवाद रखा था। दूसरी स्थिति में स्थानांतरण और नई उत्पत्ति द्वारा अपनाना है। इस स्थिति में विदेशी कार्य के भाव को ग्रहण करना है, लेकिन देशी भाषा में नई उत्पत्ति करना है। तीसरी स्थिति स्रोत-भाषा और लक्ष्य भाषा में विषयों के मध्य पूर्ण समानता प्राप्ति के उद्देश्य रखती है, जो मूल की विशेषताओं को नवीन स्वरूप और रीति से जोड़कर समझी जाती है। गोथे (Gothe) ने होमर (Homer) के *वोस* के अनुवाद को इस दौर के उदाहरण के रूप में रखा है। यहां ऐसा लगता है कि गोथे (Goethe) अपनी 'मौलिकता' की धारणा को अनुवाद में सार्वभौतिक गहन रचनाओं की दृष्टि द्वारा आगे बढ़ाते हैं। अनुवादक को अपने प्रयासों में इसे समझने का यत्न करना चाहिए।

गोथे (Goethe) की अनुवाद की धारणा जो अनुवाद्यता के सिद्धांत का प्रतिपादन करती है, वह किसी न किसी रूप में उनकी विश्व साहित्य की अवधारणा से प्रभावित थी।

6.8 19वीं शताब्दी

18वीं और 19वीं शताब्दी के अनुवाद सिद्धांत और जर्मन एवं अंग्रेजी तत्वमीमांसीय (Metaphysical) विमर्शी (जिसने साहित्यिक और अनुवाद सिद्धांत पर प्रभाव डाला) के मध्य गोथे एक कड़ी गोथे (Goethe) के अनुवाद के चरणों की चर्चा का प्रभाव सौंदर्यात्मक मूल्यांकन के श्रेणीकरण पर पड़ा। 19वीं शताब्दी में कविता और रचनात्मकता की चर्चा ने, अनुवाद के पुनर्मूल्यांकन और उसके प्रतिरूप में परिवर्तन को जन्म दिया। एस.टी. कोलरिज (S.T. Coleridge) (1772-1834) काफी हद तक जर्मन तत्वमीमांसा से प्रभावित हुआ। ए.डब्ल्यू स्कलेगल (A.W. Schelegel) (1767) सौन्दर्यशास्त्री, सिद्धांतशास्त्री और अनुवादक ने *Vorlesungen uber dramstiche keenst and literature* (1809) में अपनी चेतनायुक्त (organic) और यांत्रिक स्वरूप के सिद्धांत को प्रस्तुत किया, जो तीन वर्ष उपरांत 1813 में अंग्रेजी में अनूदित हुआ। अपने बायोग्राफिया लिट्रेरिया (Biographia Literaria (1817) में उन्होंने (कालरिज) कल्पना, चेतनायुक्त रचनात्मक शक्ति और कल्पना शक्ति, यांत्रिक मस्तिष्क में भिन्नता की। जर्मनी और इंग्लैंड में जो तर्क करने वाला प्रश्न उठा, वह यह था कि क्या अनुवाद एक रचनात्मक कार्य है या यांत्रिक कार्य (कोलरिज के) Coleridgean भाव में कल्पना के महत्त्व का अर्थ यह है कि यदि अनुवाद को मूल आत्मा को एक चेतनायुक्त सत्ता माना है तो, इसको कुछ श्रेष्ठ रचनात्मक विभाग या बल से प्रेरणायुक्त होना चाहिए। इससे विषय के पीछे के विषय के अर्थ के प्रकरण को सामने लाया गया, जिसे अनुवादक को इसके अनुवाद से पहले समझना या पकड़ना होगा।

ए.डब्ल्यू. स्क्लेगल (A.W. Schlegel) ने आकलन किया कि समस्त कार्य-बोलना और लिखना अनुवाद के कार्य हैं, क्योंकि संचार की यह प्रकृति होती है कि वह मूल के स्वरूप को रखते हुए प्राप्त सूचना को प्रकाशित करती और

समझाती है। उदाहरण के लिए जब उन्होंने दांते (Dante) का अनुवाद किया तो उन्होंने दांते (Dante) के *terza rima* को बनाये रखा। दूसरी ओर फ्रेडरिक स्क्लेगेल (Friedrich Schlegel) ने अनुवाद को विचार की उस श्रेणी तक उच्चीकृत करके नया आयाम दिया जहां इसे भाषायी या साहित्यिक श्रेणी में नहीं रखा गया। विपरीत दृष्टिकोण थे। एक ओर, अनुवादक को एक रचनात्मक प्रतिभा समझा गया अनुवाद को विचार की श्रेणी की एक धारणा के साथ जो अनुवाद द्वारा भाषा और साहित्य को समृद्ध करता है, दूसरी ओर अनुवाद एक यांत्रिक कार्य के अतिरिक्त कुछ नहीं था जिसके द्वारा विषय या लेखक को जाना गया। दूसरी धारणा ने यह स्पष्ट किया कि अनुवाद "जैसे एक निम्न स्तर का कार्य है", जैसा कि टिमोथी वेब (Timothy Webb) के अनुसार पी.बी. शेली (P.B. Shelly) ने सोचा। शैली (Shelly) ने कविता को अत्युत्तम और सबसे प्रसन्न मस्तिष्कों का अत्युत्तम और सबसे प्रसन्न क्षण समझा। यदि कोई कविता की इस अद्भुत परिभाषा को अपनाता है, तो अनुवाद को इस अनुभव को स्थानान्तरित करना पड़ेगा, जिसके लिए अनुवादक को अत्युत्तम और अतिप्रसन्न मस्तिष्क वाला होना चाहिए। अन्यथा वह इस कार्य में असफल होगा, और उसका कार्य प्रेरणाओं के स्थानान्तरण से अधिक कुछ और नहीं होगा। उन्होंने अनुवाद की इन कठिनाइयों को अपनी प्रसिद्ध रचना 'The Defense of Poetry में बताया।

यह उसी प्रकार की बुद्धिमानी है जैसे एक मर्तबान में बनफशा को ढालकर उसके औपचारिक गुणों जैसे रंग, महक इत्यादि को खोजा जा सकता है, उसी प्रकार एक भाषा से दूसरे में कविता को परिवर्तित किया जा सकता है। अपने बीज से पौधे को पुनः अवश्य ही उगना चाहिए, अन्यथा इसमें कोई फूल नहीं होगा-यह बेबेल का शाप है। इन कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए, दो प्रमुख प्रतिक्रियाएं सम्मुख आयीं। एक प्रतिक्रिया पूर्व Rephaelite कवि दांते गैब्रियल रोसेटी (Dante Grabriel Rassiti) 1928-82 से आयी जिन्होंने माना कि अनुवादक मूल के स्वरूप और भाषा के अधीन होता है। उन्होंने प्रारम्भिक इटैलियन कवियों का अनुवाद किया, क्योंकि उन्होंने समझा कि 'मूल' अस्पष्ट और अपरिपक्व थे। अपने Early Italian Poets (1861) की प्रस्तावना में उन्होंने अपने अनुवाद के मंतव्य की चर्चा की। उनके अनुसार, "नवीन राज्य को एक और सुन्दरता की भेंट देना" अनुवाद का मात्र एक उद्देश्य होना चाहिए।

दूसरी प्रतिक्रिया जर्मनी में फ्रेडरिक क्लीरमैकर (Friedrich Schleiermachars) (1768-1834) से आयी, जिसने साहित्य के अनुवाद के लिए एक पृथक उप-भाषा की रचना की वकालत की। उनके सिद्धांत ने 19वीं शताब्दी में इंग्लैंड में अनुवादक जैसे; एफ. डब्ल्यू. न्यूमैन (F.W. Newman), थामस कार्लाइल (Thomas Carlyle) (1795-1881) और विलियम मोरिस (William Morris) (1834-1896) ने उसके सिद्धांत के अपमान ने शास्त्रों जैसे; होमर (Homer) का *Odyssey* और वर्जिल (Vergil) का *Aenerid* और नोर्स सैगा और पुरातन फ्रांसीसी उपन्यासों का अनुवाद किया। उसके अनुवाद ने आस्कर वाइल्ड से रचनात्मक प्रशंसा प्राप्त की क्योंकि उन्होंने मोरिस के *Odyssey* के अनुवाद को एक कला का कार्य बताया। क्योंकि यह केवल एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करना नहीं था, बल्कि एक कविता का दूसरी कविता में अंतरण था। लेकिन उन्होंने तुरंत यह कहा कि परिवर्तन में 'नवीन आत्मा' जोड़ने की प्रक्रिया में मोरिस का अनुवाद ग्रीक से अधिक नार्वे की भाषा थी। प्राचीनीकरण, जो 19वीं शताब्दी के जर्मन और अंग्रेजी अनुवाद की विशिष्टता थी तथा अनुवाद पठन करने वाले की मान्य स्वीकृति, उनके अनुवाद में दो बिना काम की चीजें थी। थामस कार्लाइल (Thomas Carlyle) जर्मन अनुवाद के उड़ाऊपन का प्रशंसक था, और अपने अनुवाद में उसने जर्मन संरचनाओं का उपयोग किया।

19वीं शताब्दी अनुवाद क्रिया के विस्तार का काल था। उपनिवेशवाद ने इसे नवीन प्रेरणा दी। उपनिवेशकों के साहित्य को समृद्ध बनाने का मंतव्य था लेकिन इसका सैद्धांतिकरण नहीं किया गया। यूरोप केन्द्रित अनुवाद सिद्धांत पर ध्यान अंग्रेजी, जर्मन और फ्रांसीसी अनुवादों में बना रहा। फ्रेडरिक क्लीरमेकर Friedrich schleiermachar, थॉमस कार्लाइल, दांते जी (Dante) रोसेटी और विलियम मोरिस (William Morris) की उपर्युक्त चर्चा ने हमें पाठकों के प्रति कमी, छूट, रणनीति, अनुवाद के मंतव्य और चयन के बारे में कुछ युक्ति प्रदान की। अनुवादों को फिर भी बौद्धिक और अभ्यस्त पाठकों के साथ एक सौंदर्यपूर्ण या नैतिक रूप से अनुभवों को समृद्ध बनाकर बांटा गया। 18वीं सदी के अनुवाद सिद्धांत की, मैथ्यू अर्नाल्ड (Mathew Arnald) (1822) और एफ. डब्ल्यू. (F.W.), फिटजेराल्ड (Fitegerald) (1809-1863) की *On Translating Homer* के अपने प्रसिद्ध वक्तव्य में अर्नाल्ड (Arnald) अनुवादक में अथाह

विश्वास रखते हुए प्रतीत होते हैं, और वह चाहते हैं कि अनुवाद पाठक अनुवादक में विश्वास रखे, फिर भी उन्होंने निम्नलिखित सुझाव अपने अनुवादकों को प्रस्तुत किया:

अनुवादक को अपने उस विचार पर विश्वास न करने दो जो प्राचीनग्रीक उसके बारे में क्या सोचते हैं वह स्वयं अस्पष्टता में खो जायेगा। सामान्य अंग्रेजी पाठक उसके बारे में क्या सोचता है, वह उसके निर्देश के बारे में सोचने लगेगा। उसे अपने विवेक पर विश्वास न करने दो, वह व्यक्तिगत भावना द्वारा भ्रमित किया जायेगा। अब उसे अपने से पूछने दो कि उसका कार्य उनको कैसे प्रभावित करेगा जो कि उसी की तरह ग्रीक जानता है और एक कविता की प्रशंसा कर सकता है।

अर्नाल्ड चाहता था कि अनुवादक शास्त्रीय ग्रीकों, सामान्य अंग्रेजी पाठक या स्वयं अपने निर्णय के प्रति असंबंध और उनकी तरफ ध्यान दे जो ग्रीक जानते हैं और कविता की प्रशंसा कर सकते हैं। अन्य शब्दों में, अनुवादक को अवश्य ही उस पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए, और मूल विषय का कार्य करने के प्रति समर्पित रहना चाहिए। अनुवाद को मूल विषय ग्रहण करने का साधन होना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि अनुवाद की भूमिका केवल अनुवाद पढ़ने वाले की अंगुली पकड़ना और उसे मूल विषय तक ले जाने में है। यह पहले से ही मान लेताहै कि अनुवाद मूल विषय को कभी स्थानान्तरित या दर्शा नहीं सकता।

अमेरिकन कवि एच.डब्ल्यू. लांगफेलो (H.W. Longfellow) द्वारा इस प्रकरण को नयी दिशा प्रदान की गई, जिन्होंने दांते (Dante) के Divinia Comedia के अनुवाद में अनुप्रास का प्रयोग न करने के प्रकरण पर चर्चा की। उन्होंने बताया कि उनकी पुस्तक की केवल एक विशेषता थी यह बिल्कुल वैसा ही था जैसा दांते (Dante) ने कहा था, और यह नहीं था जो उन्होंने कल्पना की या वे कुछ कह सकते। यदि वह एक अंग्रेज होते। उन्होंने एक प्रकार से अपने अनुवाद को एक गद्य अनुवाद की तरह साहित्यिक अनुवाद करने का प्रयास किया। उन्होंने यह स्वीकार किया कि एक महान कवि दांते (Dante) के अनुवाद के लिए, कुछ बलिदान दिया जा सकता था। उनके लिए, निष्ठा और सत्य लयबद्धता से अधिक मूल्यवान हैं क्योंकि उन्होंने लय की झाड़ियों पर लगे फूल से तुलना की। उन्होंने आगे बताया, "एक अनुवादक का कार्य यह है कि वह यह बताये कि लेखक क्या कहता है, न कि यह है कि बताए कि उसका क्या अभिप्राय है; यह टीका लिखने वाले का कार्य है। एक लेखक क्या कहता है और वह इसे कैसे कहता है, यह अनुवाद की समस्या है।" इस प्रकार अनुवादक, एक वृतांन्त सुनाने वाला, तथा एक तकनीकविद् की तरह, सीमित भूमिका वाला है।

एफ.डब्ल्यू. फिटजेराल्ड (F.W. Fitegrald) (1809-1863) (जो *The Rubaiyats of Omar Khaiyam* (1858) के अपने अनुवाद के लिये जाने जाते हैं), ने अपने समकालिक जैसे अर्नाल्ड (Arnald) और लांगफेलो (Longfellow) से अलग स्थिति ग्रहण की। उन्होंने बताया कि एक विषय को किसी भी कीमत पर रहना चाहिए 'किसी के बदतर जीवन को स्थानान्तरित करने के साथ कोई मूल को अच्छे से नहीं रख सकता'। उन्होंने इसको लाक्षणिक रूप में व्यक्त किया; उन्होंने बताया कि एक जीवित कुत्ता मरे शेर से बेहतर है। वह यह बताते हैं कि स्रोत-पाठ की संस्कृति के संस्करण को लक्ष्य-पाठ में ले जाना संभव था। जबकि उन्होंने स्वतंत्रतापूर्वक अनुवाद किया, जैसा कि दावा किया गया कि The Rubaiyats की कमियों को सुधारा, वे औपनिवेशिक स्वामियों के प्रतिनिधि के रूप में स्रोत-पाठ या अभीष्ट-पाठ के श्रेष्ठ दृष्टिकोण को नहीं रखा। अनुवाद के उनके दृष्टिकोण में एक सर्वोत्तम को ग्रहण करने या कुछ को छांटने की बू आती है, और वे अनुवाद सिद्धांत और अध्ययनों में, आदर्शों या राजनीति के आयाम को जोड़ते हैं। उत्तर औपनिवेशिक काल में उनके दृष्टिकोण की आलोचना का विरोध न कर पाते हुए, यह तथ्य बना रहा कि अनुवाद के इतिहास में प्रथम बार लक्ष्य-पाठ ने स्रोत-पाठ से उच्च अवस्था ग्रहण की।

6.9 सारांश

इस प्रकार अनुवाद सिद्धांत की प्रक्रिया आरम्भिक शताब्दियों से लेकर 19वीं शताब्दी के अन्त तक विभिन्न कालों से गुजरती है। इसकी मुख्य धाराओं को वर्गीकरण के द्वारा संक्षेप में देखा जा सकता है।

अनुवाद को विज्ञान की एक क्रिया की तरह, जहां स्रोत-भाषा के विषय को लक्ष्य-भाषा के किसी भी अनुवाद से ज्यादा प्रभावी माना गया।

अनुवाद एक ऐसे साधन के रूप में जो विद्वान पाठक को स्रोत-भाषा के मूल पर लौटने के लिए प्रोत्साहित करता है।

अनुवाद ऐसे साधन के रूप में जो लक्ष्य-भाषा को उसके समान बनाने में सहायता करता है जिसे क्लीरमेकर ने मूल का बेहतर पाठक कहा है, जो लक्ष्य भाषा में सोद्देश्य विदेशीपन लाकर किया जाता है।

अनुवाद ऐसे साधन के रूप में जिसके द्वारा प्रत्येक अनुवादक जो अपने आपको इनचान्टेड वाल्ट्स (रोसेटी के काल्पनिक प्रतिबिम्ब) के अलादीन की तरह देखता है, लक्ष्य भाषा पाठक को अपना उपयोगी चयन करने की छूट दे।

अनुवाद ऐसे साधन के रूप में जिसके द्वारा अनुवादक स्रोतभाषा में विषय को उच्चीकृत करने का प्रयास करता है क्योंकि इसे निम्न सांस्कृतिक स्तर पर समझा गया है।

उपर्युक्त चर्चा हमें अनुवाद सिद्धांत और अनुवाद कार्यों के विकास को समझने में सहायता देती है और यह हमें 20वीं सदी की ओर ले जाती है जहां अनुवाद सिद्धांत और अनुवाद कार्यों के प्रति अभूतपूर्व अभिरूचि पायी गयी। विशेष कर 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जब अनुवाद अध्ययन एक स्वतंत्र ज्ञानात्मक अनुशासन के रूप में स्थापित हुआ।

6.10 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. अनुवाद के इतिहास में बाइबिल अनुवादों का सूक्ष्म परीक्षण कीजिए।
2. दोले का अनुवाद सम्बन्धी दृष्टिकोण और परवर्ती अनुवादकों पर उनके प्रभावों का परीक्षण कीजिए।
3. पुनर्जागरण और सुधार आन्दोलनों में अनुवाद की भूमिका को समझाइए।
4. नव-शास्त्रीय काल में अनुवाद सिद्धांत के विकास की चर्चा कीजिए।
5. 19वीं सदी में अनुवाद और अनुवादक की बदलती धारणा की चर्चा कीजिए।
6. कथन 'एक जीवित कुत्ता मरे हुए शेर से बेहतर है' से क्या आप सहमत हैं? विस्तार से बताइए।

6.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Baker, Mona. (ed.) 1998, *Routledge Encyclopedia of Translation Studies,* London: Routledge.

Bassnett, Susan, 1980, *Translation Studies,* London & New York: Routledge.

Bourriau, Nicolas, (ed.) 2009. *The Radican.* New York: Lukas & Sternberg.

..... Altermodern Manifesto: Postmodernism is Dead, 2009. http://www.tate.org.uk/britain/exhibition/altermodern/manifesto.shtm. Huntsman, J F, *Theory: A Comprehensive Bibliography.*

इकाई 7 अनुवाद के आधुनिक पाश्चात्य सिद्धांत

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 अनुवाद के आधुनिक पाश्चात्य सिद्धांतों के विभिन्न स्कूल

- 7.2.1 प्राग स्कूल
- 7.2.2 लंडन स्कूल
- 7.2.3 यूनाइटेड स्टेट्स स्कूल
- 7.2.4 स्कूल ऑफ काम्यूनिकेशन्ज

7.3 अनुवाद के आधुनिक पाश्चात्य सिद्धांत के विभिन्न विचारक

- 7.3.1 पीयर्स
- 7.3.2 न्यूमार्क
- 7.3.3 एन्द्रे लेफेवेयर

7.4 अनुवाद के प्रमुख आधुनिक पाश्चात्य सिद्धांत

- 7.4.1 संरचनापरक सिद्धांत
- 7.4.2 अर्थपरक सिद्धांत
- 7.4.3 समतुल्यता का सिद्धांत
- 7.4.4 सापेक्षतावाद का सिद्धांत
- 7.4.5 व्याख्या का सिद्धांत
- 7.4.6 सांस्कृतिक संदर्भों के एकीकरण का सिद्धांत
- 7.4.7 पुनर्कोडीकरण का सिद्धांत

7.5 सारांश

7.6 शब्दावली

7.7 अभ्यास के लिए प्रश्न

7.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

7.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे कि-

- z अनुवाद के विभिन्न आधुनिक पाश्चात्य सिद्धांतों के स्कूल से परिचित हो सकेंगे।
- z कुछ विचारकों से परिचित हो सकेंगे।
- z प्रमुख आधुनिक पाश्चात्य सिद्धांतों से परिचित हो सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना

अनुवाद की परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है परन्तु 'अन्तर्राष्ट्रीय फैडरेशन ऑफ ट्रांसलेटर्स' की स्थापना होने के पश्चात् 1950 से इसे एक व्यवसाय के रूप में भी महत्त्व मिला। आरम्भ में अनुवाद की व्यापकता की ओर किसी

का ध्यान नहीं गया परन्तु धीरे-धीरे एक स्वतंत्र विधा के रूप में इसे अपनाया जाने लगा व इसका महत्त्व समझा जाने लगा। आज अनुवाद का प्रयोजन बहुमुखी व बहुआयामी बन गया है। सम्प्रेषण माध्यम के रूप में तो आज अनुवाद हमारी सामाजिक आवश्यकता बन चुका है। विभिन्न भाषा-भाषी समुदायों के बीच अनुवाद सम्प्रेषण का कार्य करता है। डॉ. जॉनसन की परिभाषा का समर्थन करते हुए ए.एच. स्मिथ का कथन है - "To translate is to change into another, retaining as much of the sense as one can" अर्थात् यथा संभव अर्थ को बनाए रखते हुए एक भाषा से दूसरी भाषा में अंतरण ही अनुवाद है। मैलिनोवस्की ने अनुवाद के सामाजिक-सांस्कृतिक महत्त्व को रेखांकित किया। रिचडर्स के अनुसार "Translation is one of the most complex activities in the cosmos" अर्थात् अनुवाद पूरे ब्रह्माण्ड में एक जटिल प्रक्रिया है। इस प्रकार अनुवाद के विभिन्न अर्थ एवं संदर्भ प्रस्तुत किये जाते रहे हैं। समकालीन अनुवाद को दो संदर्भों में समझा जा सकता है। एक ओर इसका भाषिक अथवा भाषा वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य व दूसरी ओर सामाजिक व सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य। 1950 व 1960 तक भाषिक दृष्टि से इसका अध्ययन हुआ तत्पश्चात् 1970 व 1980 के दशक में सामाजिक व सांस्कृतिक दृष्टि से अध्ययन किया गया। 1990 तक अनुवाद ने अपने आपको विस्तृत व बहुआयामी रूप में स्थापित कर लिया था।

पश्चिमी सभ्यता में अनुवाद की परम्परा का आरम्भ 'बाइबल' के अनुवाद से होता है। इसका प्राचीन रूप हिब्रू भाषा में मिलता है। तीसरी शताब्दी में यहूदियों ने ग्रीक भाषा में इसका अनुवाद किया। 'सेप्तुअंगित' बाइबल का प्राचीनतम अनुवाद है। इस अनुवाद का साहित्यिक महत्त्व है। इस अनुवाद ने परवर्ती अनुवादकों को प्रभावित किया। लैटिन् अनुवादों को बाईबल ने महत्त्व प्रदान किया। 382 ई0 में 'पोप देमेसस' के अनुरोध पर 'संतजेरम्' ने बाईबल का अनुवाद किया। इस लैटिन अनुवाद को 'बुल्गट' कहा गया जो 405 ई0 में पूर्ण हुआ। 'ऑथराईज्ड वर्मन' अथवा 'गि जेम्सेन बाईबल' अंग्रेजी में बाईबल का प्रामाणिक एवं महत्त्वपूर्ण अनुवाद माना जाता है। पाश्चात्य अनुवाद परम्परा में बाईबल के विभिन्न अनुवादों का विशेष महत्त्व माना जाता है। होमर की रचना 'ओडेसी' का अनुवाद पद्य में किया गया जो ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में 'लिवियस ऐंद्रोनिकस' द्वारा किया गया। यूनानी नाटकों के अनुवाद लैटिन भाषा में 'नए विअस' द्वारा प्रस्तुत किए गए। 'बीड' ने अपनी पुस्तक 'एक्लेजिएस्टिकल हिस्ट्री' की रचना लैटिन भाषा में की जिसका रूपान्तर 'अल्फ्रेड' द्वारा 'ऐक्लो-सैक्सन' भाषा द्वारा किया गया 'कांसोलेशन्ज ऑफ फिलासकी' पुस्तक जो 'बायोथियस' की प्रसिद्ध रचना थी उसका अनुवाद भी शिक्षाविद सम्राट अल्फ्रेउ द्वारा किया गया जो पाश्चात्य अनुवाद परम्परा में मील का पत्थर साबित हुआ। मध्ययुग में यूनानी साहित्य का अध्ययन करने वालों की संख्या यूरोप में बहुत कम रह गई थी। इस स्थिति का प्रभाव अनुवाद पर भी पड़ा। अरबी अनुवादकों ने अरस्तू की कृतियों के अनुवाद किए। अरस्तू की प्रसिद्ध रचना 'पेरि पोइतिकेस' के अनुवाद के उपरांत 'पेरि इप्सुस' का नाम लिया जाता है। इस निबंध का अंग्रेजी में 'On the Sublime' नाम से अनुवाद हुआ। 1554 ई. में इताबली विद्वान 'रोबेतेल्लो' ने उसे प्रकाशित कराया जिस पर लेखक का नाम था 'दिओन्युसियम लौंगिनुस'। पुनर्जागरण काल में 'लियोंटियस पाइलेटस' द्वारा होमर की रचनाओं का लैटिन में अनुवाद किया गया। जर्मन विद्वानों का भी अनुवाद-परम्परा में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। जब बाईबल का अनुवाद जर्मन भाषा में 'मार्टिन लूथर' द्वारा किया गया तो जर्मन भाषा व साहित्य में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए।

श्लेगल ने जर्मन भाषा में ही शेक्सपीयर के नाटकों का भी अनुवाद किया। भारतीय प्राचीन ग्रंथों का मैक्समूलर द्वारा अंग्रेजी तथा जर्मन भाषा में अनुवाद हुआ। 'द सेक्रेड बुक्स ऑफ द ईस्ट' ग्रंथ जिसका संपादन' मैक्समूलर ने किया था, अनुवाद के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। इस ग्रन्थ में विभिन्न भाषा-भाषी अनुवादकों के अनुवाद हैं और इसे 50 खंडों में प्रकाशित किया गया है। अनुवाद के क्षेत्र में बहुत सी संस्थाएं विदेशों में विद्यमान हैं जो उत्कृष्ट रचनाओं के अनुवाद का कार्य करती व करवाती है। रूस, जापान, जर्मनी में ऐसी संस्थाएं सक्रिय हैं।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् विज्ञान व प्रौद्योगिकी महत्त्वपूर्ण हो गये। भाषा विज्ञान व अनुवाद का विकास भी होने लगा। आज तो 'मशीन ट्रांसलेशन' के युग में हम पहुंच गये हैं। अनुवाद के विषय में भी धीरे-धीरे विकास के इस क्रम में अत्यधिक परिवर्तन दिखलाई पड़ने लगा। अनुवाद को कला या शिल्प ही नहीं माना गया अपितु अब उसे विज्ञान के रूप में महत्त्व मिलना आरम्भ हुआ। कुछ विद्वानों ने मिश्रित विधि के प्रायोगिक पक्ष के रूप में इसे स्वीकार किया। ये सभी तथ्य अनुवाद सिद्धांतों को व्यापक आधार प्रदान करते हैं। आज अनुवाद के सिद्धांत मात्र दार्शनिकों, लेखकों और अनुवादकों तक ही सीमित नहीं है अपितु पाश्चात्य संदर्भ में इनका सम्बन्ध भाषा परक सिद्धांतों से भी है।

7.2 अनुवाद के आधुनिक पाश्चात्य सिद्धांतों के विभिन्न स्कूल

आधुनिक पाश्चात्य अनुवाद सिद्धांतों के निर्माण में मुख्यतः चार पाश्चात्य स्कूलों का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

7.2.1 प्राग स्कूल (Prague School)

7.2.2 लंडन स्कूल (London School)

7.2.3 यूनाइटेड स्टेट्स स्कूल (United States School)

7.2.4 स्कूल ऑफ काम्यूनिकेशन्ज (School of Communication)

7.2.1 प्राग स्कूल (Prague School)

इस स्कूल में विलय मैथिसियस निकोले, एस. रोमन याकोब्सन, लेवी और विक्टोरिया जैसे महत्त्वपूर्ण अनुवाद सिद्धांत निर्माता रहे। ये सभी भाषायी अनुवाद को बोध के धरातल पर तथा शब्दार्थ, व्याकरण भाषा तथा शैली के आधार पर समझने तथा उसे महत्त्व देने पर बल देते थे। इस स्कूल के एक महत्त्वपूर्ण सिद्धांत निर्माता 'लुयोमान्य' रहे। वह रूस में जन्मे तत्पश्चात् चैक रिपब्लिक में रहने लगे तथा द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान अमेरिका चले गये। इनकी प्रसिद्ध रचना 'On the Translation of Linguistics' जिसमें अनुवाद के सिद्धांतों की चर्चा है। इसमें अनुवाद और भाषा के सम्बन्धों की भाषा व दृष्टि से चर्चा की गई है। साथ ही इससे उत्पन्न समस्याएं भी दृष्टिगोचर हुई है। 1959 में इस रचना के प्रकाशन से पाश्चात्य अनुवाद सिद्धांतों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आया। रोमन याकोब्सन ने भाषिक पाठ को प्रतीक व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास किया। इस आधार पर उन्होंने अनुवाद को तीन तरह से देखा-

अंतःभाषिक अनुवाद (Intralingual Translation)

अंतरभाषिक अनुवाद (Interlingual Translation)

अंतरप्रतीकात्मक या प्रतीकान्तरण (Intersymbolic Translation)

अंतःभाषिक अनुवाद

किसी भाषा की एक प्रकार की प्रतीक व्यवस्था द्वारा व्यक्त अर्थ को उसी भाषा की अन्य प्रतीक व्यवस्था द्वारा व्यक्त करना अंतःभाषिक अनुवाद है। यह अनुवाद एक ही भाषा के कथ्य को उसी भाषा में एक अलग शैली में प्रस्तुत करती है। एक ही भाषा के भीतर एक ही बात को अन्य प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है। उदाहरणतः अंग्रेजी में शेक्सपीयर के पद्यबद्ध नाटकों को चार्ल्स लैब ने अंग्रेजी में गद्य में अभिव्यक्त किया यहां भाषा एक है परन्तु शैली की विधा का अन्तर है।

अंतरभाषिक अनुवाद

एक भाषा की प्रतीक व्यवस्था द्वारा अभिव्यक्त अर्थ को दूसरी भाषा की प्रतीक व्यवस्था द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है। यहां दो भाषाएं हैं अतः अनुवादक का दोनों भाषाओं पर अधिकार होना अनिवार्य है। दोनों भाषाओं की सामाजिक संस्कारगत सूक्ष्मता तथा भाषिक संरचना की विशेषताओं का ज्ञान होना भी अनुवादक के लिए महत्त्वपूर्ण है। अनुवाद करते समय स्रोत भाषा की संस्कारगत सूक्ष्मताओं को लक्ष्यभाषा की संस्कारगत सूक्ष्मताओं में अंतरित किया जाता है। ऐसे में स्रोत भाषा की प्रतीक व्यवस्था लक्ष्यभाषा की प्रतीक व्यवस्था में अंतरित होकर पाठक को लेखक के मूल के साथ सम्बद्ध कर देती है।

अन्तरप्रतीकात्मक अनुवाद

इस अनुवाद में भाषेतर व्यवस्था भी है। यहां एक तो भाषायी व्यवस्था है और दूसरी भाषेतर अर्थात् स्रोतभाषा से अर्थ का अंतरण किसी भाषेतर माध्यम द्वारा किया जाता है अर्थात् किसी कहानी या कविता का चित्रों द्वारा प्रस्तुतीकरण,

लेखकों द्वारा उनकी रचनाओं का धारावाहिक के रूप में प्रस्तुतीकरण या फिल्मांकन अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद कहलाते हैं। ऐसे अनुवाद में कथ्य और अभिव्यक्ति के सम्बन्धों पर आधारित प्रतीक की वास्तविक सत्ता उसकी प्रतीकात्मकता में होती है। मूल में भाव या विचार का यथावत् प्रतीकान्तरण ही इस अनुवाद का उद्देश्य है।

याकोब्सन का कहना है कि सारा 'अर्थ' (Meaning) अनुवाद की समझ पर निर्भर करता है। सभी भाषाओं में समान योग्यता है परंतु यदि कहीं शब्दों का अभाव प्रतीत हो तो नए शब्दों को गढ़ा जा सकता है। परन्तु व्याकरणिक दृष्टि से यह प्रक्रिया इतनी आसान नहीं है।

7.2.2 लंडन स्कूल (London School)

इस स्कूल के संस्थापक फॉक्स या 'फर्थ' थे। ये प्रसिद्ध भाषाविद् थे। इनका एक लेख 'Lingustic and Translation' और दूसरा 'Lingustic Analysis and Translation' मुख्यतः तीन बातों पर प्रकाश डालता है। पहला-अनुवाद भाषायी विश्लेषण पर आधृत है। दूसरा-अनुवाद का अर्थ पूर्ण अनुवाद 'Perfect Translation' नहीं होता और तीसरा-किन्हीं दो अलग-अलग भाषाओं में अभिव्यक्ति के स्तर पर समानता नहीं होती अतः अनुवाद एक भाषा से दूसरी भाषा में संभव नहीं है। कैटफोर्ड इस स्कूल के प्रसिद्ध भाषाविद् हुए जो एडिनवर्ग विश्वविद्यालय मे पढ़ाते थे और 1965 में 'A Lingustic Theory of Translation' पुस्तक का प्रकाशन किया। इस पुस्तक में आने से अनुवाद सिद्धांतों के क्षेत्र में नया परिवर्तन तथा प्रतिक्रिया हुई। इन्होंने भाषा के अनुस्तरित तथा वर्गीय विश्लेषण के आधार पर अनुवाद सिद्धांत का प्रतिपादन किया। ये विचार प्रसिद्ध भाषाविद् फर्थ के विश्लेषण पर आधारित है। इस सिद्धांत के अंतर्गत अनुवाद की सारी व्याख्या भाषा की संरचना पर आधारित है। कैटफोर्ड ने मुक्त और शाब्दिक अनुवाद का भेद करते हुए बताया कि भाषा की जो कड़ी अपने तदनुरूप ऊपरी या निचली अनुस्तरण की सतह पर भाषांतरित हो सकती है वह मुक्त अनुवाद की सूचक है। उनकी धारणा के अनुसार प्रत्येक भाषा और विशेष रूप से अनुवाद प्रक्रिया में सम्बद्ध भाषाएं स्तर परिवर्तन (rank shift) के आधार पर विश्लेषित की जा सकती है और उनमें एक जैसे स्तरों पर सामंजस्य बिठाया जा सकता है। कैटफोर्ड का कथन है कि "Translation is the replacement of textual material in one language (S.L.) by equivalent textual material in another language (T.L.) अर्थात् स्रोत भाषा की पाठ्य सामग्री का लक्ष्य भाषा की समतुल्य पाठ्य सामग्री द्वारा प्रतिस्थापन है।" वस्तुतः यहां पाठ्य सामग्री व अनुवाद समतुल्यता की व्याख्या करते हुए भाषा के विभिन्न स्तरों को महत्त्व दिया है। स्वन, रूपिम, व्याकरण एवं शब्द कोटि के अलावा भाषा सूक्ष्म स्तरों तक अनुवाद का जो प्रतिस्थापन होता है उसका विशद विवेचन ही 'Linguistic Theory of Translation' में किया है। अनुवाद के अर्थ तत्वों की अपेक्षा भाषा के रूप तत्वों को अधिक महत्त्व दिया है। अनुवाद को दो श्रेणियों में विभक्त करते हुए पूर्ण व आंशिक अनुवाद की संकल्पना प्रस्तुत की। अनुवाद की दो सीमाओं की भी चर्चा की। पहली व्याकरणिक विभिन्नता के आधार अनुवाद की समस्या और दूसरी भाषेतर स्तर पर अलग-अलग सभ्यता व संस्कृति के आधार पर भी अनुवाद करते हुए समस्या उत्पन्न होती है।

7.2.3 यूनाइटेड स्टेट्स स्कूल (United States School)

इस स्कूल के संस्थापक क्लोथ रम्सफेल्ड चोमस्की थे। इन्होंने शब्द व अर्थ के विश्लेषण के द्वारा भाषायी बनावट का अध्ययन किया। 1950 के दशक में इसके स्थान पर 'जियाओझी सिद्धांत' (Jiaozhi) की स्थापना हुई जिसने अनुवाद व भाषा को लेकर तीन स्थापनाएं प्रस्तुत की। पहली मनुष्य में भाषायी योग्यता सहज और स्वाभाविक है। दूसरी भाषा नियमों से बोफिल नहीं है। तीसरी भाषा की बाहरी व भीतरी बनावट होती है। अनुवाद के परिप्रेक्ष्य में विभिन्न भाषाओं के बाहरी व भीतरी अंतर को जानना वच उसका प्रभाव यह महत्त्वपूर्ण है।

7.2.4 स्कूल ऑफ काम्यूनिकेशन्ज (School of Communications)

इस स्कूल के संस्थापक है नायडा और वही इस सिद्धांत का प्रतिनिधित्व भी करते हैं। अनुवाद में अर्थ और शैली को महत्त्व देते हैं। "Translation consists in producing in the receptor language the closel - natural equivalent to the mesage of the source language first in meaning and secondly in style" अर्थात् स्रोत भाषा में अभिव्यक्त विचारों को लक्ष्य में अर्थ और शैली के स्तर पर यथा संभव और समान स्तर पर अभिव्यक्ति देना

ही अनुवाद है। यहां 'equivalent' शब्द का प्रयोग इस अर्थ में किया गया है कि स्रोत भाषा के पाठकों के लिए मूल रचना का जो मूल्य है, लक्ष्य भाषा में भी अनुवाद का लगभग वही मूल्य होना चाहिए। यही हिन्दी में 'समतुल्य' कहा गया है। यहां यह भी संकेत दिया गया कि यह आवश्यक नहीं है कि स्रोतभाषा के भाव लक्ष्य भाषा के स्थान पर 'receptor language' (संग्राहक भाषा) का प्रयोग करते हैं। वस्तुतः अनुवाद एक ऐसी भाषिक प्रक्रिया है जिसमें पूर्णता का होना अनिवार्य नहीं बल्कि समतुल्यता के आधार पर पुनः सृजन करना ध्येय है। नायडा ने यह समतुल्यता दो प्रकार की बतलाई। रूपात्मक तथा गत्यात्मक। रूपात्मक समतुल्यता के अंतर्गत शाब्दिक, भाव-प्रतिभाव और शैली-प्रतिशैली समतुल्यता आती है। गत्यात्मक समतुल्यता के अन्तर्गत प्रकार्य-प्रतिकार्य समतुल्यता आती है। अनुवाद नायडा के अनुसार एक भाषायी संक्रिया है जिसकी अपनी प्रक्रिया द्वारा अनुवाद के महत्त्व को आंका जा सकता है। इस अनुवाद प्रक्रिया के तीन चरण हैं- विश्लेषण, तरण व पुनर्गठन। अनुवादक पहले स्रोत भाषा में निहित संदेश का स्पष्ट और सरल भाषिक रूपों में विश्लेषण करता है, इसका अर्थग्रहण करता है और इसी स्तर पर उसका अंतरण करता है। इसके पश्चात् लक्ष्यभाषा की प्रकृति के अनुसार उस संदेश का पुनर्गठन करता है।

1980 के दशक में नायडा के अनुवाद सिद्धांतों में भी परिवर्तन आ गया और जो नवीन स्थापनाएं हुई इनके अनुसार- 1. अनुवाद विज्ञान नहीं अपितु प्रौद्योगिकी है। 2. अनुवाद पैदा किया जा सकता है। 3. अनुवाद मात्र भाषायी संप्रेषण ही नहीं है अपितु सामाजिक व्यवहार का भी प्रतीक है।

वस्तुतः अनुवाद के पाश्चात्य सिद्धांत भाषाविज्ञान, तुलनात्मक भाषा विज्ञान, अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान आदि के संदर्भ में विकसित हुए।

अनुवाद के आधुनिक पाश्चात्य सिद्धांतों की स्थापना में इन चार स्कूलों का महत्त्वपूर्ण योगदान है परन्तु अनुवाद को प्रकीकांतरण जब कहा जाता है तो इस संदर्भ में पीयर्स का सिद्धांत भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है। सर्वप्रथम जेनेवा स्कूल के फुर्दीन सस्यूर ने प्रतीक विज्ञान की संकल्पना को प्रस्तुत किया। सस्यूर ने भाषा को भी प्रतीकों की व्यवस्था के रूप में पारिभाषित करना चाहा और उसे प्रतीक विज्ञान के उपांग के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया किन्तु जिस समय वे अपने सिद्धांत का प्रतिपादन कर रहे थे उस समय प्रतीक विज्ञान मान्य नहीं था अतः उन्होंने मात्र संकेत दिये। पीयर्स इस बात को व्याख्यायित कर स्पष्ट करते हैं।

7.3 अनुवाद के आधुनिक पाश्चात्य सिद्धांत के विभिन्न विचारक

7.3.1 पीयर्स

पीयर्स का कहना है कि 'प्रतीक वह वस्तु है जो किसी व्याख्या के लिए अन्य वस्तु के स्थान पर प्रयुक्त होता है (A Sign is something that stands to somebody for something else in some respect or capacity' उदाहरण के लिए यदि हम 'घोड़ा' शब्द पर विचार करते हैं तो उसे प्रतीकवत् पाते हैं। उच्चरित या लिखित रूप में शब्द 'घोड़ा' स्वयं घोड़ा नहीं होता। वह तो 'घोड़ा' वस्तु के लिए प्रयुक्त प्रतीकजन्य भाषिक वस्तु है जिसे प्रयोगककर्ता वास्तविक घोड़े के लिए घोड़े के स्थान पर व्यवहार में लाते हैं। वस्तुतः प्रतीक की अवधारणा में तीन इकाईयां हैं- 1. संकेतित वस्तु, 2. संकेतार्थ, 3. संकेतन प्रतीक। 'संकेतित वस्तु' बाह्य जगत में स्थित इकाई है। जैसे 'घोड़ा'। 'संकेतार्थ' मन में स्थित उस इकाई की संकल्पना है जिसे किसी भाषायी समाज का सदस्य होने के नाते व्यक्ति उस वस्तु को लेकर अपने भाव बोध का निर्माण करता है। 'संकेतन प्रतीक' इस संकेतार्थ को अभिव्यक्ति देने वाली इकाई है।

यहां कुछ बातों पर ध्यान देने की आवश्यकता है। पहली यह कि प्रतीक का सीधा सम्बन्ध संकेतित वस्तु से नहीं होता। 'वस्तु' के लिए संकेतार्थ के रास्ते से गुजरना पड़ता है। 'प्रतीक' की मूल प्रकृति बोधात्मक है। संकेतार्थ भौतिक वस्तु की मात्र अमूर्त संकल्पना नहीं है वह सामाजिक यथार्थ है जिसे बोध के स्तर पर संकेतित वस्तु को लेकर समाज व्यक्ति को देता है जिसके निर्माण में इतिहास, सामाजिक चेतना एवं सांस्कृतिक मूल्यों का भी योगदान रहता है। अनुवादक के लिए आवश्यक है कि वह भाषिक प्रतीक का अंतरण करते हुए अपनी दृष्टि केवल संकेतित वस्तु पर ही सीमित न कर लें बल्कि संकेतार्थ को उसकी संपूर्णता में ग्रहण करें और फिर उसका अंतरण करें। यहां एक बात और महत्त्वपूर्ण हो जाती है कि अर्थ न तो एकांगी होता है, न ही प्रतीक में संदर्भ में एकपक्षी पाठ को यदि भाषिक प्रतीक माना जाए तो

उसमें तीन पक्ष स्पष्ट होकर सामने आते हैं। पहला-व्याकरणिक, दूसरा-शब्दार्थी व तीसरा संकेत प्रयोगार्थी। प्रतीक की संकल्पना के विषय में कहा जा सकता है कि वह 'कथ्य' और 'अभिव्यक्ति' की समन्वित इकाई है। भाषा के संदर्भ में सस्यूर ने संकेत दिया कि कथ्य व अभिव्यक्ति के सम्बन्धों की प्रकृति न तो सादृश्य पर आधारित है और न ही कार्य-कारण सम्बन्धों पर बल्कि यह तो यादृच्छिक है। यादृच्छिकता के कारण ही एक कथ्य के लिए भाषा के अनेक पर्यायवाची शब्द संभव है जैसे 'घोड़े' के लिए 'अश्व', 'तुरंत' आदि। यह भी देखा जा सकता है कि एक भाषा के कथ्य को जिस रूप में कोई भाषा अभिव्यक्ति देती है, उससे भिन्न रूप में भी दूसरी भाषा अभिव्यक्ति दे सकती है। वस्तुतः कथ्य को समान रूप में ग्रहण कर उसे दो भिन्न प्रतीक व्यवस्थाओं द्वारा दो भिन्न रूपों में अभिव्यक्त किया जा सकता है। अनुवाद इसी संभावना को व्यवहार में लाता है और किसी एक प्रतीक-व्यवस्था द्वारा अभिव्यक्त अर्थ को दूसरी प्रतीक व्यवस्था द्वारा अभिव्यक्त करता है।

7.3.2 न्यूमार्क

न्यूमार्क अनुवाद प्रक्रिया की दो दिशाएं मानते हैं और इसलिए वे मूलभाषा व अनूदित पाठ के सहसम्बन्ध को दो स्तरों पर स्थापित करते हैं। पहला सम्बन्ध दो पाठों के अंतरक्रमिक अनुवाद पर आधारित है। अंतरक्रमिक अनुवाद में शब्द-प्रति-शब्द अनुवाद किया जाता है। यह अनुवाद कभी-कभी भ्रामक भी होता है क्योंकि इसमें पारदर्शिता का अभाव रहता है। अनुवाद का दूसरा सम्बन्ध मूलपाठ के अर्थ बोधन ओर लक्ष्य भाषा में उच्च अर्थ की अभिव्यक्ति का है न्यूमार्क की बोधन प्रक्रिया नायडा के विश्लेषण की प्रक्रिया से अधिक व्यापक है क्योंकि इसमें विश्लेषण से प्राप्त अर्थ के साथ अनुवादक द्वारा मूलपाठ की व्याख्या का अंश भी होता है इसमें पारदर्शिता अधिक रहती है। डॉ. सुरेश कुमार न्यूमार्क के इस सिद्धांत को समझाते हुए कहते हैं कि ट्रक पर लिखे हुए 'पब्लिक-कैरियर' का अंतरक्रमिक या शब्द-प्रति शब्द अनुवाद होगा- 'लोकवाहन' परन्तु यह पारदर्शी अनुवाद नहीं है क्योंकि इसमें बोध-गम्यता का भी अभाव है। बोध के धरातल पर 'पब्लिक कैरियर' का एक अर्थ यह भी है कि यदि वह भाड़ा दे। अतः इसका पारदर्शी अनुवाद 'भाड़े का ट्रक' किया गया। बोधना व्याख्या सापेक्ष होता है और यह व्याख्या स्रोत भाषा में अन्वय के रूप में होती है। उदाहरणतः "Judgement has been reserved" इस वाक्य को स्रोत भाषा में ही अन्वय द्वारा इस प्रकार प्रस्तुत किया जाएगा "Judgement will be announced later on" बोधन के पश्चात् लक्ष्य भाषा में संदेश की अभिव्यक्ति की जाती है जिसमें पुनर्गठन व पुनः सृजन होता है। लक्ष्य भाषा में संदेश को यथासंभव सुरक्षित रखते हुए एक भाषा के रचना विधान और संस्कार से दूसरी भाषा के रचना संस्कार और शैली संस्कार तक पहुंचना होता है। उदाहरणतः I have four houses का अनुवाद होगा 'मेरे पास चार घर हैं' परन्तु I have four members in my family' का अनुवाद 'मेरे पास परिवार के चार सदस्य हैं' गलत होगा। सही अनुवाद होगा- 'मेरे परिवार में चार सदस्य हैं।' यही भाषा संस्कार है जिसमें हिन्दी भाषा व्यवहार के अनुरूप अनुवाद किया जा रहा है अन्तिम सोपान पाठ निर्माण का है। यहां अनुवादक न केवल लक्ष्य भाषा के अनुरूप संदेश को भाषिक रूप में अभिव्यक्त करता है बल्कि मूलभाषा के पाठ की प्रकृति को ध्यान में रखकर सह पाठ का निर्माण भी करता है।

7.3.3 एन्द्रे लेफेवेयर (Andre Lefevere)

1998 में सूजन बेसनेट और एन्द्रे लेफेवेयर ने 'Constructing Cultures' पुस्तक लिखी। इसका आरम्भ लेफेवेयर के 'Chinese and Western Thinking on Translation' निबंध से होता है। इस निबंध में ऐतिहासिक व सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में चीनी व पाश्चात्य अनुवाद में अंतर स्पष्ट करते हुए लेखक का मानना है कि संस्कृति स्वयं जो अनुवाद को पारिभाषित करती है उसका भाषा से कोई सम्बन्ध नहीं और उसमें मात्र सांस्कृतिक तत्व ही निहित होते हैं जैसे सांस्कृतिक एकरूपता और संस्कृति का अपना स्वरूप। इस निबंध से नए विचार और गहन अन्तदृष्टि प्राप्त होती है। इस निबंध में लेखक चीनी व पाश्चात्य दो परम्पराओं व संस्कृतियों को समानता और असमानता को इतिहास व संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में देखता है। चीनी अनुवाद में बौद्ध सूत्रों के अनुवाद के दो स्कूल थे- वैन (Ven) स्कूल और 'Zhi' स्कूल। बौद्ध धर्मग्रंथों का अनुवाद बड़ा आकर्षक था। जो चीनी दार्शनिक विचारों से भरा हुआ था। 'जिन युग' में पश्चिम में अनुवाद को लेकर 'वफादारी' की बातें की जाने लगीं और वस्तुतः अनुवाद बिना किसी सज्जा के होना चाहिए। 'कुमारजीव' जो चार महान अनुवादकों में से एक थे जिन्होंने बौद्धधर्मग्रंथों का अनुवाद किया था उन्होंने मुक्त अनुवाद को महत्त्व दिया और कहा कि अनुवाद को अपने को केवल मूल तक ही सीमित नहीं कर देना चाहिए। 'कुमारजीव'

के अनुवादों को समकालीनों द्वारा महत्त्व दिया गया क्योंकि भाषा व कथ्य दोनों ही दृष्टियों से यह अनुवाद महत्त्वपूर्ण था। लेफेवेयर का मानना है कि चीनी व पाश्चात्य परम्परा में अनुवाद लिखित की अपेक्षा मौखिक व्याख्या से शुरू हुआ परन्तु कालान्तर में दोनों विपरीत दिशाओं की ओर मुड़ गये। आरम्भ में जब बौद्ध धर्म ग्रंथों का चीनी भाषा में अनुवाद हुआ तो उस समय इन ग्रंथों का लिखित रूप नहीं था। अनुवाद भिक्षुओं की व्याख्या पर निर्भर था। पाश्चात्य परम्परा में अनुवाद वफादार होता था, सत्यता पर आधारित था। लेफेवेर ने दो संस्कृतियों व परम्पराओं में अंतर पर बल देते हुए पाश्चात्य की 'वफादार अनुवाद' की परम्परा को महत्त्व दिया जिसकी चीनी परम्परा में उपेक्षा की गई थी। 'मा जियान झोंग' ने भी मूल के प्रति वफादारी की वकालत की। जब उन्होंने ट्रांसलेशन स्कूल की स्थापना की तो उन्होंने 'समतुल्य अनुवाद' के सिद्धांत की भी बात की। उनका कथन है कि जब मेरे हाथ में पुस्तक होती है तो मैं बार-बार उसका अध्ययन करता हूँ और उसके अर्थ को समझता हूँ उसकी परिस्थितियों, परिवेश व शैली का अध्ययन करता हूं। फिर मैं अनुवाद में प्रवृत्त होता हूं। ऐसे में लक्ष्य भाषा में अनूदित पाठ को पाठक इस प्रकार पढ़ता है या पाता है जैसे वह मूल ही पढ़ रहाहो।

इस प्रकार विभिन्न पाश्चात्य विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त किए किन्तु कोई भी सर्वमान्य सिद्धांत स्थापित नहीं कर सके। यद्यपि यूरोपीय देशों में अनुवाद के सामान्य सिद्धांतों को स्थापित करने का पर्याप्त प्रयास हुआ। विदित है कि दो समान भाषी व्यक्ति भी एक सी शब्दावली का प्रयोग करते हुए भी संदेश की अभिव्यक्ति नहीं कर पाते। अभिव्यक्ति का ढंग प्रत्येक व्यक्ति का अपना-अपना होता है। यदि एक भाषा-भाषी दो व्यक्तियों की यह दशा है तो भिन्न भाषा-भाषी तो इस कार्य को और भी कठिन अनुभव कर सकते हैं। दो भिन्न भाषाओं की संरचनात्मक व्यवस्था का अध्ययन करें तो यह भिन्नता मात्र व्याकरणिक स्तर पर ही नहीं बल्कि जीवनगत इकाइयों में भी -शब्द के स्वरूप की भिन्नता विद्यमान है। अनुवाद कहीं अर्थ का अंतरण है, कहीं मूलतः व्याख्या है, कहीं समतुल्य प्रस्तुतीकरण है, कहीं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में उसे देखा जाता है तो कहीं भाषांतर व प्रतीकान्तर के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। अतएव समस्त विचारकों एवं विचारों के आधार पर कुछ सिद्धांत माने जा सकते हैं-

7.4 अनुवाद के प्रमुख आधुनिक पाश्चात्य सिद्धांत

7.4.1 संरचनापरक सिद्धांत

इस सिद्धांत भाषा की संरचना के व्यस्थित रूप से उद्घाटन का परिणाम है। यद्यपि भाषिक संरचना के विभिन्न प्रारूपों के आधार पर इसमें न्यूनाधिक भेद पाए जाते हैं। उदाहरणः कैटफोर्ड ने अपने सिद्धांत की व्याख्या भाषा की संरचना को लेकर ही की परन्तु वे विभिन्न भाषायी स्तरों की बात करते हुए मुक्त अनुवाद की बात करते हैं। मुक्त व शाब्दिक अनुवाद का भेद करते हुए भाषांतर की प्रक्रिया बतलाते हैं। मूलरूप से अनुवाद भाषायी विश्लेषण पर ही आधृत है। भाषा के विभिन्न स्तरों स्वन, रूपिम, व्याकरण व शब्दकोटि के अलावा भाषागत सूक्ष्म स्तरों के प्रतिस्थापन की चर्चा करते हैं। अनुवाद के रूप तत्वों का महत्त्व अधिक है। क्लोथ रम्सफेल्ड चोमस्की भी शब्द व अर्थ के विश्लेषण के द्वारा भाषायी संरचना को महत्त्व प्रदान करते हैं। कैटफोर्ड के इस संरचनापरक सिद्धांत का व्यावहारिक स्तर पर भी प्रभाव देखा जा सकता है और अनुवाद प्रशिक्षण के दौरान अनुवादक तैयार करते हुए इस सिद्धांत का उपयोग किया जा सकता है।

7.4.2 अर्थपरक सिद्धांत

जहां एक ओर भाषाविद् भाषा की संरचना के सूक्ष्म विश्लेषण के लिए उपकरण तैयार कर रहे थे वहीं दूसरी ओर भाषा के अर्थ पर भी ध्यान दिया जाने लगा। अर्थ की प्रकृति पर चर्चा होने लगी तथा अर्थ का अर्थ भी खोजा जाने लगा। ऑग्डन एवं रिचर्डस की पुस्तक 'Meaning of Meaning' है जिसमें इस विचार को लेकर चर्चाएं होने लगी। भाषिक अभिव्यक्ति का अर्थ प्रयोगपरक संदर्भ से होता है- यह नया दृष्टिकोण आया। परम्परावादी विचारक तो भाषिक अभिव्यक्ति का अर्थ अनुभव के आधार पर मानते थे। यहां एक प्रश्न था कि क्या अर्थ को अभिव्यक्ति से या भाषिक प्रतीक से अलग करके देखा जा सकता है? जो विचारक यह मानते थे किसी न किसी स्तर पर अभिव्यक्ति का अर्थ स्वतंत्ररूप से किया जा सकता है वे अनुवाद के संदर्भ में यह तर्क देते थे कि अनुवाद प्रक्रिया में किसी पाठ के अर्थ को

दूसरी भाषिक अभिव्यक्ति देना ही अनुवाद है। इस धारणा को कुछ विद्वानों ने शरीर व आत्मा का सम्बन्ध मानते हुए अनुवाद को एक आत्मा का मूल काया में से निकालकर परकाया में प्रवेश करना बताया। इसके विपरीत कुछ विचारकों का मानना था कि भाषिक प्रतीक और उसका अर्थ अलग-अलग नहीं किए जा सकते हैं। प्रत्येक अपने संदर्भ से ही अर्थ ग्रहण करता है अतः भाषिक प्रतीक के बहुत से अर्थ हो सकते हैं। इस धारणा को मानने वालों का मत है कि अनुवाद - प्रक्रिया में किसी मूल पाठ में प्रयुक्त किए जाने वाले भाषिक प्रतीकों के संदर्भपरक अर्थ को ध्यान में रखते हुए अन्य भाषा व्यवस्था में वैसे ही भाषिक प्रतीक चुने जाने चाहिए ताकि वह अपने भाषिक संदर्भ में वैसा ही अर्थ दे पाएं।

सेमुअल जॉनसन ने भाषा को नया आयाम देते हुए कहा- To translate is to change into another language retaining the sense अर्थात् मूलभाव का संरक्षण होना चाहिए। पीटर न्यूमार्क का कथन है कि 'अर्थ के नष्ट होने की प्रक्रिया बहुत कुछ घटती-बढ़ती रहती है, कभी अर्थ का विस्तार हो जाती है तो कभी अर्थ संकोच' 'लियोनार्ड फारस्टर' का कथन है - 'अनुवाद स्रोतभाषा के प्रतीकों और चिह्नों का लक्ष्य भाषा में अन्तरण है।' 'डॉस्टर्ट' भी अनुवाद को अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान की शाखा मानते हुए कहते हैं 'जिसका सम्बन्ध प्रतीकों के एक सुनिश्चित समुच्चय से दूसरे समुच्चय के अर्थ से है।

अतः स्पष्ट हो जाता है कि अनुवाद में अर्थ को बनाए रखते हुए लक्ष्य भाषा में अंतरण होता है। अर्थ सम्प्रेषण की प्रक्रिया में अनुवादक को मूलकृति के लेखक की सीमाओं का अतिक्रमण नहीं करना चाहिए।

7.4.3 समतुल्यता का सिद्धांत

एक भाषा के किसी पाठ का 'सहपाठ' के रूप में अंतरण अनुवाद कहलाता है। अनुवाद की प्रक्रिया में तीन-तत्वों का ध्यान रखा जाता है। पहला-स्रोतभाषा में रचित मूलपाठ, दूसरा-लक्ष्य भाषा में रचित सहपाठ और तीसरा- अनुवादक जो मूलपाठ का विश्लेषण कर अर्थग्रहण करता है। इसे लक्ष्यभाषा से रूपान्तरित करता है और सहपाठ के रूप में फिर पुनर्गठन का प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या स्रोतभाषा व लक्ष्य भाषा की संरचना समरूप है? कैटफोर्ड के अनुसार "अनुसार एक भाषा के पाठ्परक उपादानों का दूसरी भाषा के पाठपरक उपादानों के रूप में समतुल्यता के सिद्धांत के आधार पर प्रतिस्थापन है।" नाइडा के अनुसार "अनुवाद का सम्बन्ध स्रोतभाषा के संदेश का पहले अर्थ और फिर शैली के धरातल पर पहले लक्ष्य भाषा के निकटतम, स्वाभाविक तथा तुल्यार्थक उत्पादान प्रस्तुत करने से होता है।" दोनों परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि यहां अनुवाद का आधार समतुल्यता का सिद्धांत है चाहे यह समतुल्यता पाठपरक उपादानों का हो या अर्थ और शैली के धरातल पर। जुलियाना हाउस के अनुसार 'अनुवाद स्रोतभाषा की पाठ्य सामग्री का लक्ष्यभाषा की अर्थ तथा व्यवहार की दृष्टि से समतुल्य पाठ्यसामग्री से प्रतिस्थापन है।" कैटफोर्ड, नाइडा, टेवर, पोपोविच इस सिद्धांत के समर्थक है। समतुल्यता एकनिष्ट नहीं होती, यह बहुआयामी स्तर पर कार्य करती है।

शाब्दिक अनुवाद

इस अनुवाद में समतुल्यता का आधार भाषिक उपादान होता है। अनुवाद करते समय स्रोतभाषा के भाषिक उपादानों के समतुल्य लक्ष्य भाषा में भाषिक उपादान चुने जाते हैं। जैसे- Save Skin - चमड़ी बचाना परन्तु यह हास्यास्पद हो जाता है। दूसरा मान्य है जैसे a bird's eye view - विहंगम दृष्टि आदि। यहां मूलपाठ के शब्द, पदबंध व वाक्यों का अनुवाद किया जाता है।

भाव-प्रतिभाव अनुवाद

यहां भाषिक उपादान के रूप में अभिव्यक्ति पर उतना बल नहीं होता जितना संप्रेष्य कथ्य पर। उदाहरणतः जब मुहावरे व लोकोक्तियों का अनुवाद किया जाता है तो शब्द या पदबंध के आधार पर अनुवाद न कर मूलपाठ के मुहावरों के अर्थ को ध्यान में रखते हुए समतुल्य अर्थ को अभिव्यक्ति करने वाले लक्ष्यभाषा के मुहावरों का चयन करते हैं। जैसे Killing two birds with one stone का हिन्दी में 'एक पंथ दो काज' अनुवाद होता है।

शैली-प्रति-शैली अनुवाद

इस अनुवाद में एक ओर तो भाषा शैली की बात की जाती है तो दूसरी ओर विभिन्न विधाओं की। समतुल्यता का आधार

शैली हो सकती है यदि कविता का अनुवाद कविता में हो और उपन्यास का उपन्यास में परन्तु कभी-कभी पद्य का अनुवाद गद्य में भी किया जाता है।

प्रकार्य-प्रति-प्रकार्य अनुवाद

जब किसी प्रतीकात्मक अर्थ का प्रयोग किया जाता है तो उस अर्थ की समतुल्यता को लक्ष्यभाषा में ढूंढा जाता है जिसे पाठक गूढ़ार्थ तथा संवेदना के रूप में ग्रहण करता है। जैसे-अज्ञेय की कविता का उदाहरण देख सकते हैं - 'यह स्रोतस्विनी ही कर्मनाशा कीर्तिनाशा घोर/काल-प्रवाहिनी बन जाए' -and that this claping flow becomes A fame - dissolving and time - swallowing tide' यहां शब्दों में, वाक्यों में समानता नहीं है, प्रभाव में है। इसी प्रकार 'उल्लू' शब्द के लिए भी अनूदित पाठ के पुनर्गठन करते हुए समतुल्य लक्ष्य भाषा में उपलब्ध प्रतीक ढूंढना पड़ता है। नाइडा ने समतुल्यता की दो कोटियां बताई हैं।

1. रूपात्मक

2. गत्यात्मक

रूपात्मक के अनतर्गत शाब्दिक, भाव-प्रति-भाव व शैली-प्रतिशैली अनुवाद को लिया जा सकता है क्योंकि इसमें स्रोतभाषा के पाठ के शब्द की शब्द के आधार पर, वाक्य की वाक्य के आधार पर तथा विधा की विधा के आधार पर समतुल्यता की स्थापना की जाती है। गत्यात्मक समतुल्यता के अंतर्गत प्रभावपरक अनुवाद की बात की जाती है। यहां अनुवादक यह ध्यान रखता है कि स्रोतभाषा में अभिव्यक्त संदेश को लक्ष्य भाषा में किस प्रकार प्रस्तुत किया जाए। यहां पाठक के प्रभाव को दृष्टिगत रखते हुए पाठ के प्रतीकपरक अर्थ को अनुवादक लक्ष्यभाषा में समतुल्यता के आधार पर अनुवाद करता है।

7.4.4 सापेक्षतावाद का सिद्धांत

यह सिद्धांत अनुवाद की परिभाषा के संदर्भ में एक नया प्रश्न उठाता है कि अनुवाद समतुल्यता के सिद्धांत के आधार पर 'अंतरण है' या 'प्रतिस्थापन'? प्रायः स्रोत भाषा के पाठ का लक्ष्य भाषा के पाठ के रूप में अंतरण अनुवाद कहलाता है। अनुवाद का भाषिक संदर्भ अंतरण की अपेक्षा प्रतिस्थापन की बात करता है। दो विभिन्न भाषाएं जीवन और जगत को अपनी-अपनी दृष्टियों के आधार पर प्रस्तुत करती हैं। कैटफोर्ड भी कहता है कि अनुवाद में स्रोतभाषा के अर्थ का लक्ष्यभाषा में 'प्रतिस्थापन' होता है, न कि उसका अंतरण। वस्तुतः अंतरण के अंतर्गत स्रोतभाषा के अर्थ का लक्ष्यभाषा में प्रत्यारोपण का भाव दिखलाई पड़ता है। लोकोक्तियों, मुहावरों व सामाजिक-सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों के संदर्भ में अंतरण-प्रक्रिया की अपेक्षा प्रतिस्थापन प्रक्रिया अधिक दिखलाई पड़ती है, सापेक्षतावादी सिद्धांत यह संकेत देता है कि प्रत्येक भाषा अपने अनुभव संसार को अपने ढंग से संयोजित एवं व्यक्त करती है। भौतिक धरातल पर तो तथ्य एक ही रहता है किन्तु जब भाषा उसे बोध के धरातल पर ग्रहण करती हैं तो उसे अपनी विशिष्ट दृष्टि द्वारा एक नया संदर्भ देती है। सस्यूर, सेपीर, वोर्फ आदि भाषाविदों ने विभिन्न भाषा-भाषी समुदायों के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला था कि संसार को देखने के लिए प्रत्येक भाषा अलग-अलग दृष्टिकोण देती है। उदाहरणतः अगर भौतिक तथ्य के रूप में रंगावली के स्पेक्ट्रम को लें तो एक छोर से दूसरे छोर तक रंगों का अनवरत प्रवाह देखा जा सकता है परन्तु प्रत्येक भाषा-समुदाय इन रंगों को अपने ढंग से विभाजित कर नाम दिया करता है। सस्यूर का कहना है कि ध्वनि, रंगावली आदि का कोई प्राकृतिक विभाजन नहीं मिलता बल्कि प्रत्येक भाषा-भाषी समुदाय इसे यादृच्छिक ढंग से विभाजित करता है। अंग्रेजी व हिन्दी भाषा-भाषी समुदाय इस 'स्पेक्ट्रम' को सात रंगों में विभाजित करते हैं जबकि नाइजीरिया की 'तीव' भाषा केवल तीन रंगों में इसका विभाजन करती है। इसका अर्थ यह है कि नाइजीरिया के लोग सभी रंगों को भौतिक धरातल पर तो पहचानते हैं परन्तु भाषिक यथार्थ के रूप में रंगों को तीन रंगों में ही विभाजित करते हैं। अतः सापेक्षतावादी सिद्धांत के विद्वानों का मानना है कि अनुवाद प्रक्रिया में स्रोतभाषा के पाठ के भाषिक अभिलक्षणों का लक्ष्यभाषा के पाठ में अंतरण नहीं किया जाता अपितु प्रकार्य के आधार पर स्रोतभाषा के अभिलक्षणों को लक्ष्यभाषा के अभिलक्षणों द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है।

7.4.5 व्याख्या का सिद्धांत

स्रोत भाषा में रचित सामग्री की लक्ष्यभाषा में व्याख्या की जाती है। कुछ पाश्चात्य विद्वान अनुवाद को व्याख्या मानते हैं। पाश्चात्य विद्वान डी.जी. रोजेरी का कथन है कि अनुवाद सम्भवतः टीका-टिप्पणी का सर्वाधिक प्रत्यक्ष रूप है। रोमन याकोब्सन एक भाषा के शाब्दिक प्रतीकों की अन्य भाषा के शाब्दिक प्रतीकों द्वारा व्याख्या को अनुवाद मानते हैं। जेम्सहोम्स के अनुसार सब तरह का अनुवाद आलोचनात्मक व्याख्या है। नाइडा भी इस बात को महत्त्व देते हैं कि प्रत्येक 'अनुवाद में कुछ न कुछ व्याख्या रहती है। इस सिद्धांत को मानने वालों का यह विचार है कि साहित्यिक अनुवाद के संदर्भ में अनुवादक अर्थ का अंतरण करते हुए उसकी व्याख्या कर डालता है। साहित्यिक कृति में विद्यमान विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक स्थितियां, भाषिक व व्याकरणिक संरचना तथा सौंदर्यपरक अनुभूतियों को लक्ष्यभाषा में रूपान्तरित करते हुए अनुवादक वस्तुतः व्याख्या कर डालता है। एज़रा पाउड अनुवाद को साहित्यिक पुनर्जीवन मानते हैं। ऐसे में सृजन की प्रक्रिया में अनुवाद करते हुए अनुवादक कहीं न कहीं कुछ-न-कुछ व्याख्या अवश्य करता है। यही कारण है कि कभी-कभी एक ही कृति का अनुवाद दो विभिन्न अनुवादकों द्वारा किया जाता है तो वह समान नहीं होते। इस भिन्नता का आधार अनुवादक की व्याख्यात्मक क्षमता ही है।

7.4.6 सांस्कृतिक संदर्भों के एकीकरण का सिद्धांत

भाषा का केवल भाषिक परिप्रेक्ष्य ही नहीं होता अपितु उसका अपना एक सांस्कृतिक परिवेश भी होता है क्योंकि भाषा समाज विशेष में जन्मती, पलती व पोषित होती है। प्रत्येक भाषा में अपनी सांस्कृतिक विशेषताएं विद्यमान रहती है, उन्हें दूसरी भाषा में रूपांतरित करते हुए कठिनाई आती है क्योंकि एक संस्कृति दूसरी संस्कृति से भिन्न होती है। अनुवाद एक भाषा में विद्यमान सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों का दूसरी भाषा में निहित सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों के मध्य पुल का कार्य करता है। अनुवाद इस प्रकार एक भाषा का अंतरण नहीं बल्कि संस्कृतियों का अंतरण है। अनुवाद में संस्कृतियों का अंतरण वैश्विक धरातल पर महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मौलिनोवस्की का कथन है कि "अनुवाद सांस्कृतिक संदर्भों का एकीकरण है" इससे सांस्कृतिक संदर्भों का पुनः सृजन भी होता है।

7.4.7 पुनर्कोडीकरण का सिद्धांत

इस सिद्धांत के अनुसार अनुवाद स्रोत भाषा के पाठ का पहले विकोडीकरण है और इसके बाद कोडीकरण के माध्यम से अर्थ का लक्ष्यभाषा के पाठ में पुनर्गठन है। भाषा वैज्ञानिक उपकरणों के माध्यम से पहले मूल पाठ का विश्लेषण (विकोडीकरण) कर अर्थ ग्रहण किया जाता है। इसके पश्चात् स्रोत भाषा व लक्ष्यभाषा का वैज्ञानिक पद्धति से तुलनात्मक अध्ययन कर उसकी समानताओं व असमानताओं को स्पष्ट किया जाता है। इसके बाद प्राप्त अर्थ का कोडीकरण के माध्यम से पाठ के रूप का पुनर्गठन होता है। भाषा वैज्ञानिक विलियम फ्रावले इस सिद्धांत के समर्थक हैं। उनके अनुसार इस कोडीकरण की प्रक्रिया में दो कोड हैं - 'मैट्रिक्स तथा' 'लक्ष्य कोड'। स्रोत भाषा पाठ को मैट्रिक्स तथा लक्ष्यभाषा पाठ को 'लक्ष्य कोड' कहा। फ्रावले का कहना है कि अनुवादक भाषिक संरचनाओं का कोडीकरण करता है फिर समतुल्य लक्ष्यभाषा में शब्दार्थ, संकल्पना आदि कोडों में रूपान्तरित किया जाता है। प्रेषक व ग्रहीता के संदेश की पृष्ठभूमि में एक कोड रहता है जो निर्माण व पाठ ग्रहण के समय दोनों में उपलब्ध रहता है। प्रेषक और श्रोता के बीच 'सरणि' (Channel) होती है जो प्रेषक और ग्रहीता के बीच माध्यम परक, सम्बन्धपरक और कोडपरक सम्पर्क स्थापित करती है। नायडा व मेलेनोव्स्की का भी इस सिद्धांत में महत्त्वपूर्ण योगदान है।

7.5 सारांश

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि यद्यपि अनुवाद की परम्परा प्राचीनकाल से चली आ रही है परन्तु आधुनिक युग में इसे एक व्यवसाय के रूप में महत्त्व मिलना आरम्भ हो गया। इसे एक स्वतंत्रा विधा के रूप में भी मान्यता मिली। आधुनिक युग में इसे जहां एक ओर भाषिक व भाषा वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में समझा जाने लगा, वहीं दूसरी ओर इसका सामाजिक व सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य भी उपेक्षित नहीं रहा। विज्ञान व प्रौद्योगिकी के युग में अनुवाद को और भी विस्तार मिला। मशीन ट्रांसलेशन, अनुवाद की शिल्प व विज्ञान के रूप में मान्यता ने इसके बहुमुखी आयामों को व्यापक आधार प्रदान किया। आधुनिक पाश्चात्य अनुवाद सिद्धांतों के निर्माण में मुख्यतः चार विचारधाराओं ने अपनी भूमिका निभाई।

ये चार विभिन्न स्कूल हैं -प्राग स्कूल, लंडन स्कूल, युनाइटेड स्टेट्स स्कूल तथा स्कूल ऑफ कम्यूनिकेशन्ज। इन विभिन्न विचारधाराओं के सम्प्रेषण में रोमन याकोब्सन, कैटफोर्ड, नायडा तथा फॉक्स का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। इसके अतिरिक्त पीयर्स, न्यूमार्क तथा लेफेवेर ने भी अनुवाद सिद्धांतों के निर्माण में अपनी विस्तृत भूमिका निभाई। रोमन याकोब्सन ने अनुवाद को अंतःभाषिक, अन्तरभाषिक व अन्तर प्रतीकात्मक रूप में विश्लेषित किया। कैटफोर्ड व नायडा ने समतुल्यता के आधार पर विवेचन किया। लेफेवेरे ने अनुवाद के सामाजिक, सांस्कृतिक पक्ष को स्पष्ट करते हुए कुछ सिद्धांत बनाएं। इन सभी विचारकों व विचारधाराओं के आधार पर कुछ सामान्य सिद्धांतों की स्थापना की जा सकती है जिनमें संरचनापरक, अर्थपरक, समतुल्यता, सापेक्षता और पुनर्कोडीकरण के सिद्धांतों का विवेचन मुख्यतः अनुवाद को व्यापक आधार प्रदान करते हैं।

7.6 शब्दावली

स्कूल ऑफ ट्रांसलेशन : अनुवाद सिद्धांत सम्बन्धी विभिन्न विचारधाराएं

अंतःभाषिक : किसी भाषा की एक प्रकार की प्रतीक व्यवस्था द्वारा व्यक्त अर्थ को उसी भाषा की अन्य प्रतीक व्यवस्था द्वारा व्यक्त करना

अन्तरभाषिक : एक भाषा की प्रतीक व्यवस्था द्वारा अभिव्यक्त अर्थ को दूसरी भाषा की प्रतीक व्यवस्था द्वारा अभिव्यक्त करना

अनतरप्रतीकात्मक : एक भाषा के अर्थ को किसी भाषेतर माध्यम द्वारा अभिव्यक्ति (फिल्मांकन आदि)

स्रोत भाषा : मूलभाषा (Source Language)

लक्ष्यभाषा : जिसमें अनुवाद किया जाता है (Target language)

संग्राहक भाषा : लक्ष्यभाषा, जिसमें अनुवाद किया जाता है। (Receptor language)

यादृच्छिक : मनमाना, जहां कोई तर्क नहीं है।

विकोडीकरण : भाषावैज्ञानिक उपकरणों से मूलपाठ का विश्लेषण कर उसका अर्थ ग्रहण किया जाता है।

कोडीकरण : प्राप्त अर्थ का पाठ रूप में पुनर्गठन

7.7 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. अनुवाद का आधुनिक स्वरूप क्या है?
2. अनुवाद को आधुनिक युग में किस परिप्रेक्ष्य में विवेचित किया जाता है?
3. आधुनिक पाश्चात्य अनुवाद सिद्धांत के निर्माण में कौन सी विचारधाराएं महत्त्वपूर्ण रही।
4. आधुनिक पाश्चात्य अनुवाद सिद्धांत के निर्माण में कौन-कौन से महत्त्वपूर्ण विचारक रहे तथा उनकी अनुवाद सम्बन्धी क्या धारणाएं थी?
5. विभिन्न पाश्चात्य अनुवाद-सिद्धांतों का विवेचन कीजिए।

7.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. Karunakaran, K., Jaya Kumar, M. (ed.), *Translator as Synthesis : A Search for a New Gestalt,* New Delhi, Bahri Publications.

2. Yuenthener, F. and Yuenthner, M., (ed.), 1978. *Meaning and Translation, Philosophical and Linguistic Approaches*, Gerold Duckuorth & Company Limited.

3. Singh, Avadesh K. (ed.), 1996. *Translation: Its Theory and Practice*. New Delhi, Creative Books.

4. Priceardi, Alessandra (ed.), *Translation Studies, Perspectives on an Emerging Discipline*, Cambridge University Press.

5. श्रीवास्तव, रवीन्द्रनाथ और गोस्वामी, कृष्ण कुमार, *अनुवाद : सिद्धांत और समस्याएं*, दिल्ली, आलेख प्रकाशन।

6. नगेन्द्र (सं.), *अनुवाद विज्ञान*, दिल्ली।

7. टंडन, पूरनचंद, *अनुवाद साधना*, दिल्ली, अभिव्यक्ति प्रकाशन।

8. अय्यर, एन.ई. विश्वनाथ, *अनुवादकला*, दिल्ली, प्रभात-प्रकाशन।

9. भाटिया, कैलाशचन्द्र, *अनुवाद कला : सिद्धांत और प्रयोग*, दिल्ली, तक्षशिला प्रकाशन।

इकाई 8 उत्तर आधुनिकता और अनुवाद के सिद्धांत

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 आधुनिकतावाद और उत्तरआधुनिकतावाद

8.3 उत्तरआधुनिकता की अभिवृत्तियां

- 8.3.1 महाख्यानों का निषेध
- 8.3.2 यथार्थ का अस्वीकार
- 8.3.3 अर्थहीनता एवं संदेह
- 8.3.4 विकेन्द्रीकरण
- 8.3.5 विसंरचना
- 8.3.6 मृत्यु की घोषणा

8.4 उत्तरआधुनिकतावाद एवं अनुवाद के सिद्धांत

- 8.4.1 पेरोडी एवं पेश्टीच
- 8.4.2 माध्यम दृष्टिकोण द्वारा सम्प्रेषण
- 8.4.3 दलित साहित्य के अनुवाद का सिद्धांत
- 8.4.4 फोटोजेनिक व टोलिजेनिक शैली
- 8.4.5 इमेज व प्रतीकों द्वारा अभिव्यक्ति
- 8.4.6 पाठ का महत्व
- 8.4.7 स्त्रीपाठ का सिद्धांत

8.5 सारांश

8.6 शब्दावली

8.7 अभ्यास के लिए प्रश्न

8.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

8.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

आधुनिकता और उत्तर आधुनिकता के विषय में संक्षेप में जान सकेंगे।

उत्तर आधुनिकता की अभिवृतियों को जान सकेंगे।

उत्तर आाधुनिकता में विभिन्न अनुवाद सिद्धांतों को समझ सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

उत्तरआधुनिक पदबंध का सबसे पहले प्रयोग अंग्रेज चित्रकार जौन वाटकिंस कैपमैन ने 1870 में 'पोस्टमाडर्न पेटिंग' के रूप में किया। इसके बाद 1917 में रुडोल्फ पानविट्स की कृति 'दि त्राइसिस इन यूरोपियन कल्चर' में इस पदबन्ध का प्रयोग सैन्यवादी, राष्ट्रवादी व अभिजात मूल्यों की व्याख्या के संदर्भ में हुआ। इतिहासकार अयनवी ने 1920 में

'पोस्टमाडर्न' शब्द का प्रयोग किया। यह प्रयोग आधुनिकता की समाप्ति के लक्षणों का संकेत था। 1922 में इलियट की 'वेस्टलैण्ड' कविता प्रकाशित हुई। स्पेंगलर ने 'दि डैक्लाइन ऑफ दि वैस्ट' लिखी। ऑलविन टाफ्लर की 'फ्यूचर शॉक' 1971 में, 'द थर्ड वेव' 1981 में और 1990 में 'पावर शिफ्ट' जैसी रचनाएं सामने आई। आधुनिकता को 1970 के दशक में फेडरिक जेम्सन की पुस्तक Post Modernism : Cultural Logic of Late capitalism के प्रकाशन के बाद स्पष्ट विचारधारा के रूप में जाना जाता है। दरीदाफूको आदि उत्तर आधुनिकता के प्रमुख सिद्धांतकार हैं।

उत्तरआधुनिक शब्द पर विचार करने से पूर्व 'उत्तर' शब्द पर ध्यान देना अनिवार्य है। 'उत्तर' शब्द के दो अर्थ हो सकते हैं। पहला- पूर्वस्थिति का नकार, दूसरा-पूर्व स्थिति का अगला चरण। 'उत्तरआधुनिक' में दोनों ही पक्ष महत्त्वपूर्ण हैं। साहित्य में आधुनिकता का पुनर्लेखन आरम्भ हो चुका है। आधुनिक जीवन दृष्टि ने जो कुछ प्रस्तुत किया था, वह पुराना पड़ चुका है और आज एक नई दृष्टि की आवश्यकता महसूस होने लगी है। बैजनाथ सिंहल का मानना है, "उत्तरआधुनिकता निःसंदेह आधुनिकता की प्रतिस्थिति है। आधुनिकता के विचारधाराओं, वृत्तातों के रूप में जो कुछ सामने रखा था उत्तर आधुनिकता ने उसे अमान्य घोषित कर दिया है।" कैलाश वाजपेयी उत्तरआधुनिकताको एक दिन में घटी घटना नहीं मानते बल्कि "वह एक तरह की परिणति है, चाहे तो इसे दुर्गति भी कह सकते हैं, ऐसी दुर्गति जिसके बीज आदमी की तथाकथित प्रगति में ही विद्यमान थे। उत्तरआधुनिकता हर तरह के उपकरण-विफोट से जन्मी वह अपघटना है जिसे गरीबी के बावजूद हम सबको भुगतना है। केन्द्र विसरण, आदर्शों का अन्त, इतिहास का अंत, विज्ञान पर संशय, आवश्यकता से आगे अतिरिक्त पर बल, क्षण, अमरतत्व या अमरत्व की निरर्थकता, उत्सवधर्मिता ... और शुद्ध उपयोगितावादी दृष्टिकोण आदि उत्तरआधुनिकता के तात्पर्य पर टिप्पणी करते हैं" क्या उत्तरआधुनिकता एक मानसिक स्थिति है? एक प्रवृत्ति है? एक आन्दोलन है या एक विचारधारा है? क्या यह एक नकारात्मक रवैया है जो आधुनिकता के विरुद्ध उभरकर सामने आया है। उत्तरआधुनिकतावाद इतिहास की प्रचलित प्रणालियों व बुद्धिवाद के विरुद्ध एक ऐसी चिन्तन प्रक्रिया है जिसने आधुनिक चिन्तन व संस्कृति को प्रभावित किया।

उत्तरआधुनिकतावाद किसी एक व्यक्ति का दर्शन नहीं है। इसकी प्रस्तुति बहुत से विचारकों ने की अनेक अन्तर्विरोध भी उत्पन्न हुए। उत्तरआधुनिकता आधुनिकता की अगली स्थिति तो है ही क्योंकि आधुनिकतावादी सोच के नकार में उत्तरआधुनिक दर्शन की प्रस्तुति की। सुधीश पचौरी उत्तरआधुनिकता को पूंजीवादी विकास की एक नई स्थिति मानते हैं। जगदीश्वर चतुर्वेदी ने फूको के चिंतन की चर्चा करते हुए कहा कि फूको आधुनिकता का पूरी तरह विरोध करते हैं। मार्क्सवाद व मनोविश्लेषणवाद स्थानीय अनुसंधान में उपयोगी हो सकते हैं। परन्तु दोनों सिद्धांतों को सूक्ष्म विश्लेषण के प्रसंग में नजर अन्दाज कर देना चाहिए। अतः उत्तरआधुनिकतावाद एक ऐसा दर्शन है जो आधुनिकता के विरुद्ध ही नहीं है बल्कि आधुनिकता के आगे की स्थिति है।

उत्तरआधुनिकतावाद वृद्ध पूंजीवाद की संतान मानी जाती है। यह एक आर्थिक एवं सांस्कृतिक अवस्था है। पचौरी ने उत्तरआधुनिक सिद्धांतों के चार संस्करण माने हैं- उत्तर संरचनावाद, नवमार्क्सवाद, नव-व्यवहारवाद और स्त्रीवाद। उत्तर आधुनिकतावाद की कोई एक परिभाषा सम्भव नहीं क्योंकि वह समग्रतावाद का विरोधी है। जगदीश्वर चतुर्वेदी के अनुसार, "कोई उसे छलना कहता है। किसी के लिए चिन्हों की लीला है। किसी के लिए सांस्कृतिक तर्क है। किसी के लिए तर्क का अंत है। किसी के लिए इतिहास का अंत है। किसी के लिए विखंडन है, किसी के लिए विकेन्द्रण है। किसी के लिए बहुलतावाद है। किसी के लिए महावृत्तांत का अंत है।" ल्योतार इसे आधुनिकता से जोड़कर देखते हैं। उत्तरआधुनिकता को आधुनिकता का विस्तार मानते हैं।

8.2 आधुनिकतावाद और उत्तरआधुनिकतावाद

उन्नीसवीं शताब्दी में आधुनिक युग के आरम्भ के साथ-साथ ज्ञान-विज्ञान की नई अवधारणाओं का सृजन होता है। परम्परा के मृत रूप को छोड़ना व नए को आत्मसात करना इनकी विशेषता है। मध्ययुगीन मूल्यों में परिवर्तन के कारण सांस्कृतिक परिवर्तन हुआ। यहीं से आधुनिकता का आरम्भ होता हे। परम्परा, संस्कृति, भाषा, राजनीति-विज्ञान आदि सभी क्षेत्रों में आधुनिकतावाद व आधुनिक चेतना का संघर्ष चलता रहा। आधुनिकतावादी सामाजिक शक्तियों को नियंत्रण में नहीं मानता। आधुनिकतावाद का प्रमुख तत्व है विखंडन। बीसवीं शती के आधुनिकतावादी चिन्तकों ने

चिंतन को मात्र वर्तमान तक सीमित कर दिया। उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में जर्मनी अभिव्यंजनावाद का आरम्भ हुआ किरचर, ब्लेल, रेमंड-रोडलॉफ एवं अन्य लोगों ने 1905 में 'दि ब्रिज' नामक ग्रुप की स्थापना की। इन्हें चित्रकला का ज्ञान नहीं था! समाज की आततायी छवि इन लोगों के मन में थी। प्रौद्योगिकीय विकास को सामाजिक विकास के लिए बुरा मानते थे जार्ज लुकाच ने आधुनिकता के संदर्भ में परिप्रेक्ष्यहीनता की चर्चा की। वह समकालिकता पर बल देता है तथा ऐतिहासिक निरन्तरता को अस्वीकार करता है। रेमंड विलियम आधुनिकतावाद को 'ऐतिहासिक फिनॉमिना' मानते हैं। आधुनिकता आंदोलन की प्रमुख प्रवृत्ति के रूप में अति-यथार्थवाद की भी चर्चा होती है। इसमें एकाकी मनुष्य की गाथा है। कलाकार फेंटेसी, भ्रम व स्वप्न के द्वारा अपनी स्वतंत्रता की सीमा निर्धारित करता है। आधुनिकतावाद आन्दोलन के रूप में जाना जाता है। जनोपयोग, अलगाव एवं भौतिकवाद का अस्वीकार इसकी विशेषता है। व्यक्ति जब अपने भावों को वस्तुओं के माध्यम से अभिव्यक्त करता है तो उपभोक्तावाद का प्रसार होता है उपभोक्तावाद का जन्म विज्ञान से होता है। आधुनिकतावाद के विकास के रूप में यदि विचार किया जाए तो उत्तरआधुनिकतावाद का प्रयोग प्रवृत्ति मात्र लगती है जिसकी विशेषता है कि वह विज्ञान की समस्त दृष्टियों को नकारता है। यौन सम्बन्ध में अप्राकृतिक तत्वों को महत्त्व देता है। नारी मुक्ति को स्वतंत्र रूप में हल करने की कोशिश करता है।

8.3 उत्तरआधुनिकता की अभिवृत्तियां

8.3.1 महाख्यानों का निषेध

आधुनिकता ने महाख्यानों का निर्माण किया परन्तु उत्तरआधुनिकता ने इस सबको अर्थहीन कर दिया। जो धारणाएं जीवन को दिशा दे सकती थी जैसे सत्य, नैतिकता, ईश्वर, इतिहास, परम्परा आदि - उनकी विश्लेषणात्मक छानबीन सम्भव नहीं। विज्ञान, मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद इन सबका निषेध हुआ क्योंकि आधुनिकता के लिए जो वैध या प्रामाणिक था, उत्तरआधुनिक में वह प्रमाणिक हो गया। परम् सत्य कुछ भी नहीं है। सत्य व तर्क मृतप्राय हो चुके हैं। ज्ञान कल्पना के द्वारा सम्भव है। सिद्धांत के बजाय नेरेटिव से सम्भव है। यथार्थ की प्रस्तुति भाषा के द्वारा हो सकती है परन्तु विटगेस्टीन की इस संकल्पना का उत्तर रोटरी ने देते हुए कहा कि हमें भाषा में प्रतिनिधित्व के विचार को त्यागना होगा तथा आयरनी, रेडिकुल और पैराडी को बुनियादी उपकरण के रूप में प्रयोग करना होगा।

8.3.2 यथार्थ का अस्वीकार

उत्तरआधुनिता वस्तुओं के पीछे 'अल्टीमेट रियेल्टी' जैसी चीज को नहीं मानती। हमारी ऐतिहासिक व सांस्कृतिक दृष्टि जो दिखाती है, वह हम देखते हैं। विज्ञान प्रतिगामी आकस्मिकता की धारणा पर बल देता है। उत्तरआधुनिकता यथार्थ पर नहीं अपितु 'प्रतिरूप' की बात कहती है। समस्त सामाजिक जीवन वास्तविकता से परिचालित नहीं होता बल्कि प्रतिरूप, मॉडल तथा प्योर इमेज से परिचालित है। इस प्रकार नए प्रतिरूप बनते जाते हैं। यह सारी प्रक्रिया इतनी तेजी से घटित होती है कि व्यक्ति व समाज का यथार्थ से कोई सम्बन्ध नहीं हेाता उत्तरआधुनिकतावचाद जगत को वीडियो गेम की तरह प्रस्तुत करता है जहां दृश्य के द्वारा बहलाने की कोशिश की जाती है। सभी भूमंडलीय गेम के चरित्र बनकर रह जाते हैं। यहां इमेज तथा भौतिक यथार्थ के बीच का अंतर खत्म हो जाता है। यहां यथार्थ नहीं बल्कि यथार्थ की कोटि होती है। उत्तरआधुनिकतावाद जीवनशैली एवं संस्कृति, उपभोक्ता वस्तुओं तथा तकनीक के बारे में ज्यादा विकल्प पैदा करता है। वह यथार्थ के सभी क्षेत्रों का उद्घाटन करता है जिसमें सब अपना-अपना यथार्थ चुनते हैं।

8.3.3 अर्थहीनता एवं संदेह

उत्तरआधुनिकता के अनुसार दुनिया सत्य व तर्क से दूर है तथा किसी प्रकार का ज्ञान सम्भव नहीं है। एकमात्र भाषा है जो अस्तित्व से सम्बन्ध स्थापित करवाती है। यहां अर्थ की कोई गुंजाइश नहीं। जगत प्याज की तरह है। इसका विखंडन करते हैं, पर्त-दर-पर्त छीलते जाते हैं, अंततः कुछ भी नहीं मिलता। अर्थहीनता चरम पर पहुंच जाती है जहां कोई दिशा नहीं मिलती। साथ ही संदेह की स्थिति भी उत्तरआधुनिकता की विशेषता है। वह किसी पर भी विश्वास नहीं करता। सिद्धांतों पर संदेह, सत्य पर संदेह, अनुभव पर संदेह - ये सभी कुछ उत्तरआधुनिकता के अंतर्गत है।

8.3.4 विकेन्द्रीकरण

विकेन्द्रीकरण की अवधारणा ल्योतार ने प्रस्तुत की। अपने निष्कर्षों को 'द पोस्ट मार्डन कंडीशन' में प्रस्तुत किया। ज्ञानोदय व वृद्ध पूंजीवाद को समझने के उपरांत आधुनिकता को समाज के अन्तर्द्वन्द्व के लिए उत्तरदायी ठहराया। ल्योतार का कथन है कि प्रत्येक प्रकार की आधुनिकता एक विचारधारा गढ़कर अपनी प्रामाणिकता सिद्ध करने का प्रयास करती है। प्रत्येक विचारधारा तर्काश्रित वृतांत के साथ अतिकेन्द्रीयता की ओर बढ़ती है। ल्योतार विकेन्द्रीयता की प्रक्रिया में आधुनिकता से जुड़ी हुई विचारधाराओं के अन्त की घोषणा करते हैं। ईश्वर का अंत, विचारधाराओं का अंत, इतिहास का अंत तथा साहित्य व कलाओं का अंत इसमें विवेचित हुआ। ल्योतर ने उत्तरआधुनिकता की किसी भी विचारधारा को सार्वभौमिक नहीं माना। उत्तरआधुनिकता केन्द्रों को तोड़ती है नए को स्थापित नहीं करती।

8.3.5 विसंरचना

'देरिदा' उत्तरआधुनिकता से जुड़े आन्दोलन 'विसंरचनावाद' से सम्बन्ध रखते हैं। देरिदा ने उत्तरआधुनिकताा पर सामाजिक, आर्थिक, दृष्टि से ही विचार नहीं किया बल्कि लिखित पाठ के आधर पर 'विसंरचना' की दृष्टि से नया आयाम प्रस्तुत किया। संरचनावाद के संस्थापक 'सस्यूर' की स्थापना को देरिदा न निरस्त किया और कहा कि भाषा शब्द व अर्थ की व्यवस्था नहीं बल्कि चिन्हों की व्यवस्था है। देरिदा लेखक को प्रथम मानते हैं क्योंकि उसमें अर्थों की बहुलता है। देरिदा पाठ के महत्त्व को स्थापित करते हैं। पाठ पढ़ा जाता है और विसंरचना इस पठन के दौरान सब प्रकार के पूर्वग्रहों व केन्द्रों को तोड़ते हुए ऐसे अर्थों को पहचानती है जो भाषा की तह में छिपे रहते हैं। पश्चिम के केन्द्रवाद को तोड़ते हुए देरिदा स्थापित करते हैं कि अर्थ को भाषा के बाहर खोजा जा सकता है। पाठक का महत्त्व लेखक से अधिक है। पाठक सब प्रकार की अब तक की समस्त पद्धतियों का निषेध करते हुए विसंरचनावाद यह प्रमाणित करता है कि पाठ में छिपे सत्य की उपस्थिति दलितों व शोषितों से जुड़ी है। अतः विसंरचनावाद द्वारा उद्घाटित सत्य पहले के सत्यों के विरोध में नए तथा प्रामाणिक हैं क्योंकि वे पाठ में से निकले हैं। ये वही सत्य हैं जिन्हें ल्योतार अप्रस्तुति योग्य मानता है।

8.3.6 मृत्यु की घोषणा

उत्तरआधुनिकतावाद ने मृत्यु की घोषणाएं कर डाली। पहले ईश्वर की मृत्यु की घोषणा हुई, तत्पश्चात् मनुष्य की मृत्यु की भी घोषणा कर दी गई। देवेन्द्र इस्सर के अनुसार अस्तित्ववाद ने प्रोमिथियस की छवि छीन कर उसे सिसिफस की नियति प्रदान की कार्लमार्क्स ने वर्ग संघर्ष और फ्रायड ने यौन वृत्ति तथा अवचेतना की नियति का दास बना दिया उत्तरआधुनिकता शारीरिक स्तर पर विसंरचना की बात करते हैं शरीर में अंग-प्रत्यारोपण व विद्युत उपकरण लगाए जा रहे हैं। मनुष्य की मूल प्रामाणिक प्रकृति बदली है तथा वह प्रकृति विहीन रूप में सामने आ रहा है। उसकी न कोई जीवनी है न इतिहास। इतिहास 'फिक्शन' है अतः इतिहास का अंत हो चुका है। परन्तु इसके विपरीत विश्व के प्रत्येक देश का इतिहास, क्षेत्रीय व जातीय इतिहास की बात करता है। इन इतिहासों को किसी वृत्तांत या विचारधारा से नहीं बांधा जा सकता अतः ये नए-नए तथ्य प्रस्तुत कर रहे हैं। उत्तरआधुनिकता की मान्यता है कि विचारधारा विशेष से सम्बद्ध साहित्य जड़ हो जाता है अतः कला और साहित्य की मृत्यु हो गई है।

वस्तुतः उत्तर आधुनिकता किसी एक सिद्धांत का वरन् अनेक सिद्धांतों का नाम है। ये नवीन बौद्धिक अभिवृत्तियां नए सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अवस्थाओं से जन्मी हैं। उत्तरआधुनिकता एक नई सांस्कृतिक अवस्था भी है। यह बहुलतावादी विचारधारा है अतः इसकी सर्वमान्य परिभाषा नहीं हो सकती।

आई.ए. रिचर्डस ने अनुवाद के विषय में कहा, "Translation may probably be the most complex type of event yet produced in the evolution of the cosmos" इस उक्ति से पूर्णतः असहमति प्रकट तो नहीं की जा सकती है परन्तु इस संदर्भ में नामकरण सम्बन्धी शब्दावली के आधार पर बहुत कुछ स्पष्ट हो चुका है। अनुवाद के लिए तर्जुमा, अनुकरण, भाषान्तर, रूपान्तर, कोडीकरण या पुनः कोडीकरण, पुनर्प्रस्तुतीकरण आदि शब्दों का यदि प्रयोग किया जाए तो अनुवाद की व्याख्या तथा स्वरूप ही बदल जाता है। वैश्विक परिप्रेक्ष्य में जहां विश्वग्राम की चर्चा की जाती है, बहुभाषीय समाज में अनुवाद मात्र साहित्यिक रूप में ही नहीं अपितु सामाजिक - सांस्कृतिक एवं व्यावसायिक क्षेत्र में आदान-प्रदान रूप में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। आज के इस बहुभाषीय समाज में यदि अनुवाद उपलब्ध नहीं है, तो समाज नष्ट हो जाएगा। औपनिवेशिक मानसिकता में 'अनुवाद कैसे किया जाए' व 'किसका अनुवाद, किया जाए'

यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न रहा। वस्तुतः अनुवाद में 'विज़न' या 'सृजनात्मक विज़न' की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। स्रोतभाषा से लक्ष्यभाषा में रूपान्तरण की प्रक्रिया सामाजिक उत्तरदायित्व को भी अपने ढंग से पूर्ण करती है।

अनुवादक का उत्तरदायित्व मात्र स्रोत भाषा अथवा मूलभाषा के प्रति ही नहीं अपितु उस समाज के प्रति भी है जिसके लिए वह अनुवाद कर रहा है। अनुवाद के सामाजिक उत्तरदायित्व का प्रश्न आज की इस 20वीं शताब्दी में भारतीय परिप्रेक्ष्य में और भी महत्त्वपूर्ण है जब भारतीय मानस औपनिवेशिक मानसिकता से युक्त होना चाहता है और साहित्य में विभिन्न भारतीय भाषाओं के माध्यम से स्थापित होना चाहता है। पश्चिम में अनुवादक को 'परजीवी' कहा गया जो दूसरों द्वारा किए गए कार्य की अनधिकृत चेष्टा है। धीरे-धीरे संरचनावाद व उत्तरसंरचनावाद तथा रोलां बार्थ के सिद्धांत सामने आए जिसने लेखक को ही केन्द्र से परिधि में ला दिया। बार्थ ने 'The Death of the Author' में लेखक के अन्त की घोषणाा कर दी। व्यक्ति के रूप में लेखक नहीं रहा बल्कि 'पाठ' का महत्त्व स्थापित होने लगा। केन्द्र नहीं रहा अपितु विकेन्द्रीकरण हो गया। जॉक देरिदा ने लेखक को परिधि में धकेल दिया जिसके परिणामस्वरूप समीक्षक व अनुवादक जो परिधि में थे केन्द्र में आए। यद्यपि आज भी मुख्यधारा में उन्हें स्वीकृति नहीं मिली है, परन्तु परिवर्तन के क्रम में उन्हें सामाजिक स्वीकृति शीघ्र ही मिल जायेगी।

अनुवाद वस्तुतः सृजनात्मकता का विस्तार है। अनुवाद सर्जकपाठक समीक्षक है, एक असफल या निराश लेखन नहीं। अनुवादक पढ़ता है, व्याख्या करता है और समीक्षा द्वारा सृजन करता है तथा दूसरी भाषा में एक नए पाठ का निर्माण करता है इस प्रकार कोडीकृत संदेश का विकोडीकरण होता है तत्पश्चात् लक्ष्य भाषायी व्यवस्थानुसार पुनर्कोडीकरण होता है। अनुवाद एक अनिवार्य पुल बन जाता है और दिलीप चित्रे ने इस विषय में कहा - "एक स्वतंत्र कवि के रूप में मैं अनुवाद द्वारा रूपांतरित उत्तरआधुनिक दुनिया में रहता हूं। मुझे भारत और यूरोप के मध्य अपने भीतर एक पुल बनाना है अन्यथा मैं खण्डित या अपूर्ण हूँ।" अनुवाद एक भाषा का दूसरी भाषायी व्यवस्था में मात्र अनुकरण नहीं है अपितु लक्ष्यभाषा के पाठकों को एक संदेश का सम्प्रेषण भी है जिनकी संस्कृति व भाषा अलग है। इस प्रकार अनुवाद संस्कृति का अनुवाद भी है अतः अनुवाद को अपने सिद्धांतों में भी इसी के अनुसार परिवर्तन करना होगा।

8.4 उत्तरआधुनिकतावाद एवं अनुवाद के सिद्धांत

8.4.1 पेरोडी एवं पेश्टीच

पेरोडी अन्तर्पाठीयता का व्यंग्यात्मक रूप है जिससे इतिहास को उलट-पुलट किया जाता है। इतिहास को जानने और लिखने के उत्तरआधुनिक तरीके हैं। इतिहास की पाठीयता और प्रत्येक रचे हुए शब्द में अन्तर्पाठीयता देखी जाती है। कोई भी रचना अन्तर्पाठ के बिना सम्भव नहीं। पाठक पढ़ते हुए अपना एक अन्तर्पाठ सिद्ध करता है जिससे अर्थ की प्राप्ति होती है। उत्तरआधुनिकता में 'पेरोड़ी' का विशेष महत्त्व है। आरम्भ में यह स्थापत्य में दिखा जहां प्राचीन ऐतिहासिक स्थापत्य की नकल में नए स्थापत्य दिखे। इतिहास में पेरोडी का प्रयोग करने से साहित्य में व्यंग्यात्मकता आती है। यह दोहरा अस्त्र है। यह आधुनिकतावादी जकड़बंदी को बाहर भीतर दोनों तरफ से तोड़ता है। पैरोडी के द्वारा उपलब्ध कलारूपों को उपयोग में लाया जाता है और उन्हें तोड़ा भी जाता है, स्थिर भी किया जाता है और अस्थिर भी। इस क्रम में पेरोड़ी अपने भीतर के अन्तर्विरोधों को भी उजागर करती है। 'पेश्टीच' उत्तरआधुनिक कला के क्षेत्र में एक नई विधाा है। ये पेरोडी का अगला रूपाकार है जो उससे निकलकर भी अलग है। जेम्सन ने इसे 'अतीत की तमाम शैलियों का भक्षण' कहा है। 'पेरोडी' एक तरह का आत्मकथन भी होती है वह जिसका उपहास बनाती है, उसे अपनी संरचना में ढालती है। पेरोड़ी एक साथ वर्तमान और भूत का एक परिप्रेक्ष्य देती है जिससे कलाकार एक विमर्श खड़ा कर देता है। पेरोडी एक दूरी रचती है और पाठक या दर्शक को शामिल भी करती है। लेखक और पाठक इसमें एक साथ शामिल हो जाते हैं।

8.4.2 माध्यम दृष्टिकोण द्वारा सम्प्रेषण

फ्रैंकफर्ट समुदाय के माध्यम दृष्टिकोण की परम्परा के विकास में हेबरमास का योगदान महत्त्वपूर्ण माना जाता है। सम्प्रेषण सिद्धांतों की परम्परा के संदर्भ में उनके द्वारा रचित 'आदर्श भाषण की परिस्थिति' का सिद्धांत महत्त्वपूर्ण है। सम्प्रेषण के इस सिद्धांत का व्यवहार पर ज्यादा प्रभाव है परंतु यह सिद्धांत अन्तर्विरोधपूर्ण भी है। आदर्शवक्तृता की

परिस्थितियों के लिए हेबरमास ने चार तत्वों को महत्त्वपूर्ण माना है। 1. हिंसारहित माहौल, 2. जनता तथा निजी जीवन की भाषण कला में अंतर, 3. परम्परागत प्रतीकों तथा बहस के तरीकों से उत्पन्न समस्याएं तथा 4. भाषण की समान सुविधाओं पर बल। 'आदर्श भाषण' के लिए समानता जरूरी है। जिन व्यक्तियों में संवाद हो रहा है वे एक समान भाषागत क्षमता रखते हों। एक जैसी भाषिक संरचना तथा रूपों का प्रयोग करते हों। साथ ही साथ ज्ञान का स्तर भी समान हो। सी. मैलियर ने इस समान-स्तर की हेबरमास के संप्रेषण सिद्धांत को विकसित करने के लिए चर्चा की। हेबरमास की इस धारणा की धुरी है स्वतंत्रता, सत्य और न्याय की धारणा। हेबरमास के 'संप्रेषण क्षमता' के सिद्धांत का आंतरिक अर्थ है 'भाषायी क्षमता'।

इसमें भाषा को दो व्यक्तियों के बीच में समानता के आधार पर विश्लेषित किया। इस धारणा में असुविधा तब आती है जब दो असमान व्यक्तियों में संवाद हो। एक भाषा में समर्थ और दूसरा असमर्थ तो कैसे संवाद होगा? असमर्थ हमेशा समर्थ से सीखता है और विकास करता है। व्यवहार में भाषागत समानता जैसी स्थिति संभव नहीं। आदर्श भाषण की परिस्थितियां एक ही वर्ग और एक ही स्तर के लोगों से संभव है जो आंतरिक तौर पर समान हो तथा अन्य समूहों की तुलना से असमान हों। 'संप्रेषण क्षमता' का सिद्धांत राजनीतिक प्रयोग के दौरान राजनीतिकहीनता की बात करता है। भाषागत राजनीतिक प्रयोगों के आधार पर घटित भाषायी परिवर्तनों के प्रश्नों को फ्रैंकफर्ट समुदाय के चिंतनों ने उठाया है। इन चिंतकों ने इस तथ्य की उपेक्षा की कि भाषागत प्रयोगों को राज्य की संरचना बड़े पैमाने पर प्रभावित करती है। आधुनिक राज्य भाषा को स्कूलों के माध्यम से प्रभावित करता है। साथ ही सरकार माध्यमों के द्वारा भी भाषा को प्रभावित करती है। चिंतक ने इस संदर्भ में 'राज्य और भाषा', स्कूल तथा भाषा के अन्तर्सम्बन्धों पर विमर्श किया है।

8.4.3 दलित साहित्य के अनुवाद का सिद्धांत

दलित साहित्य को जानने के लिए यह पहली शर्त है कि दलित को जानें उसके अन्तर्विरोधों और चुनौतियों को जाने। उसकी सामाजिक-आर्थिक एवं राजनीतिक जरूरतों को जानें तथा इनको किस प्रकार प्राप्त किया जाए इसका वैज्ञानिक नजरिया विकसित किया जाए। दलित दृष्टि से देखने के बजाए वैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाए किसी भी भाषा के साहित्य का परिप्रेक्ष्य भारतीय साहित्य के परिप्रेक्ष्य में ही निर्मित हो सकता है। राजेन्द्रयादव ने दलित मूवमेंट को 'डी क्लास' होने की प्रक्रिया से जोड़ा। दलित साहित्य के अन्तर्विरोधों को दो रूपों में समझा जा सकता है या तो नीग्रो साहित्य के संदर्भ में इसकी स्थिति समझे या फिर महिलाओं के संदर्भ में। देरिदा के 'डिफरेंस' पर यदि 'अदर' के संदर्भ में विचार करें तो इसमें निरंतर 'स्थगन' का भाव है। 'अन्य' को हम जितना जानते हैं उतना ही अज्ञान का विस्तार होता जाता है, सामाजिक समस्याएं बढ़ती चली जाती हैं। समस्याओं का अंत नहीं होता। इसका कारण है अन्य की संरचनात्मक अनुपरिस्थिति। दलित की भी यही नियति है। उसे जितना जानते हैं, उससे ज्यादा जानने की जिज्ञासा पेदा होती है। 'अदरनेस' के सम्बन्ध में एक बात और ध्यान देने की है कि फ्रेंच व अंग्रेजी भाषा में इसका जो अर्थ है, वह भारतीय भाषा में नहीं है। तमिल, कन्नड़ तथा मलयालम में 'अदर' का अर्थ है 'एक और' (वन मोर) जबकि हिन्दी में अदर का अर्थ है दूसरा (सेकेंड)। अतः यह अर्थ उलझन पैदा करता है।

दलित साहित्य में आत्मकथा की विधा का बड़े पैमाने पर उपयोग मिलता है। यह 'अन्य का आत्म में' तथा 'आत्म का अन्य' में रूपायन है। 'स्व' तथा 'अन्य' के बीच संवाद बनाने की कोशिश है। 'स्व' जब अपनी आत्मकथा वर्तमान संदर्भ में लिखता है तो अतीत की घटनाओं को पुनर्निर्मित करता है जिससे यह 'स्व' का रूप संकुचित हो जाता है। आत्मकथा जीवन की लिखित भूमिका है। इस स्तर पर 'स्व' तथा 'अन्य' का आमना-सामना होता है। यह वह 'अन्य' है जो कभी 'स्वयं' के भीतर था। दलित साहित्य के लिए एक विचारणीय मुद्दा है कि आर्थिक-सामाजिक स्थिति के आधार पर वह वर्गीय विश्लेषण तक ही सीमित न रहे बल्कि समाज के एक विशेष संरचनात्मक तत्व-वर्ण पर भी दृष्टि रखे। दलित साहित्य वर्ग और वर्ण के सम्बन्धों के अन्तर्विरोधों को रेखांकित करे तथा उसके सामाजिक यथार्थ को उभार कर प्रस्तुत करे। पणिक्कर के अनुसार दलित साहित्य की विशेषता यह है कि वह बुनियादी तौर पर मौखिक रूप से रचित तथा संप्रेषित होता है। इसमें पुनरावृत्ति पर जोर है तथा पाठभेद की विविधता है। यहां दैनन्दिन जीवन अनुभव का प्रमुख स्थान है। यह अनलंकृत भाषा का साहित्य है। विधाओं में शिल्प के नए प्रयोगों के प्रति प्रोत्साहन का भाव है। इस साहित्य में दो विरोधी प्रवृत्तियां दिखाई पड़ती हैं- पहली उपनिवेशक की संस्कृति तथा विचारधारा से सहमति का भाव

और दूसरा उसके विरुद्ध विद्रोह का भाव। दलित साहित्य आंतरिक प्रेरणा से उत्पन्न होने के बजाए श्रमजन्य पसीने से कमाया हुआ है इसलिए इससे उत्प्रेरित धारणाएं ऐन्द्रिक स्तर की हैं और वे स्पष्ट बिम्ब बनाते हैं। इसमें वर्जित शब्दों, संकेतों व प्रतीकों का प्राचुर्य है। यह केन्द्र प्रमुख प्रवृत्तियां यहां प्रमुखता से मिलती हैं यह विभिन्नता व वैविध्य का साहित्य है।

8.4.4 फोटोजेनिक व टोलिजेनिक शैली

कुछ माध्यम विशेषज्ञ रेडियो, सिनेमा व टेलिविजन में कॉमन जमीन की चर्चा करते हैं। ये तीनो माध्यम जनता के साथ इमेज का प्रसारण करके सम्बन्ध स्थापित करते हैं। इमेज को पढ़े जाने वाले अर्थ के साथ संयुक्त करते हैं। भाषण कला की ध्वनि व व्यंजनाओं में भी परिवर्तन करते हैं। इमेज का पठनीय अर्थ से जोड़ा जाना संवाद की नई संरचना को जन्म देता है। इस प्रकार टेलिविजन प्रसारण के उपकरण के बजाए अभिव्यक्ति के उपकरण के रूप में प्रस्तुत होता है। भाषा व दृश्य यहां अन्तर्ग्रथित होते हैं। यह एक ऐसी अभिव्यक्ति शैली को जन्म देता है जो फोटोजेनिक के बजाए टेलिजेनिक होती है। फोटोजेनिक भाषा कृत्रिम होती है जबकि टेलिजेनिक भाषा स्वाभाविक होती है। टेलिविजन में 'कथ्य' व 'फार्म' दोनों हैं। इसका कथ्य संस्कृति और विचारधारा को व्यक्त करता है जबकि 'फार्म' अर्थ को व्यक्त करता है। टेलिविजन का फार्म उसके कंटेंट से ज्यादा प्रभावशाली है। टेलिविजन में प्रकाश, डायलॉग, संगीत, बैठने की शैली आदि को चरित्रों के साथ मिलाकर देखना चाहिए जिससे इनके अंतः संबंधों को पहचानने में मदद मिलती है। इसे 'मीडिया डिस्कोर्स' कहते हैं। इसमें दुनिया की यथार्थ अनुभूतियों को जगाने का कार्य किया जाता है। माध्यम डिस्कोर्स भाषा के सामाजिक स्रोत को नहीं बताता बल्कि मीडिया डिस्कोर्स के लिए वस्तुगत स्थिति पैदा करता है। वह सत्य पैदा करता है। केप्लान की धारणा है कि निर्माता के पास यह विश्वास होता है कि 'कथ्य' की शक्ति से दिमाग में परिवर्तन किया जा सकता है।

टेलिविजन का केन्द्रीय तत्त्व है विचारधारा एवं आत्मगतता की अनुकरणात्मक प्रस्तुति। इसमें यथार्थ का सृजन नहीं अपितु निर्मिति की जाती है। ऐसी अवस्था में यथार्थ संवाद में आता है। टेलिविजन यथार्थ को 'इनकोड' करता है जिसके कारण यह एक विचारधारा प्रस्तुत करता है यह सत्य नहीं है, मूलतः यह प्रतीकों के संप्रेषण का जनमाध्यम है। बौद्रिलार्द उत्तरआधुनिक संदर्भ में जनमाध्यमों की व्याख्या करते हैं। उनका कहना है कि टेलिविजन के प्रसंग में पुनरुत्पादन या विकृत प्रस्तुतीकरण के संदर्भ में टेलिविजन को पारिभाषित किया जाए या नहीं, यह कोई मुद्दा नहीं है। आज हम नकल युग में जी रहे हैं। 'नकल' अतियथार्थ की उपज है। आज हम इमेजनिर्मित सम्बन्धों में जी रहे हैं। इमेज और यथार्थ के दो भिन्न धरातल नहीं होते। इमेज के आधार के तौर पर यथार्थ एवं विचारधारा के अंत या लुप्त होने के कारण आख्यान विलुप्त हो गया। इमेज के अनुभवों का इस प्रकार विखंडन हुआ। इस उत्तरआधुनिकयुग में विखंडन का सबसे उपयुक्त माध्यम टेलिविजन है। उत्तर आधुनिक इमेज विच्छिन तत्वों को समाहित किए हुए है। यह सिग्नीफायर व सिग्नीफाइड में अंतर स्वीकार नहीं करता। समाज व संस्कृति को संगठित करने के लिए उत्तरआधुनिक दृष्टिकोण नस्ल, लिंग आदि के आधारों को उभारकर उनका आदर्शीकरण करता है। इनका सम्मिश्रण व आदान-प्रदान की परम्परा को नकारता है। खंडितरूपों को उभार कर प्रस्तुत करता है। यहां इमेजों की अलग तरह से प्रस्तुति है। यहां सिग्नीफायर को पुनर्कल्पित किया जाता है। यह एक ऐसी नकल है जिसका युग सापेक्ष अर्थ नहीं होता। यह हृदय यथार्थ है। टेलिविजन के माध्यम से लेखक की पहचान का लोप होने का खतरा है। मार्शल मैकलुहान ने इसे एक्शन के बजाए रि-एक्शन का माध्यम माना है। रूडोल्फ अर्नहाइम का कहना है कि टेलिविजन द्वारा सिलसिलेवार ढंग से संदेश संप्रेषित व प्रक्षेपित होते हैं जिसे सम्बद्ध क्षेत्र या देश की जनता ग्रहण करती है। टेलिविजन इमेज तीन चरणों से होकर गुजरती है। पहले चरण में इमेज हमारा ध्यान खींचती है, दूसरे में हमारे घरेलू वातावरण में प्रवेश करती है और तीसरे चरण में इमेज दर्शक के दृष्टिकोण का हिस्सा बन जाती हैं। यह प्रक्रिया अदृश्य रूप से घटित होती है।

8.4.5 इमेज व प्रतीकों द्वारा अभिव्यक्ति

जीन बौद्रिलार्द उत्तरआधुनिक सिद्धांतों में मार्क्सवाद व चिन्हशास्त्र के समन्वय की बात करते हैं। इनका कहना है कि आधुनिक समाज में आने से पहले समाज में प्रतीकों की श्रृंखला होती है और उसी के माध्यम से विनिमय हुआ करता है। प्रतीकात्मक समाज की विशेषता है कि उसे चिन्हों के विनिमय के इर्द-गिर्द इकट्ठा कियाजाताहै जैसे उपहार देना, उत्सव या मेले का आयोजन। आज यदि विज्ञापन की प्रकृति का अध्ययन किया जाए तो पौराणिक मिथकों या चिन्हों

का प्रयोग लगातार बढ़ रहा है। इनकी पैरोडी का आस्वाद करते-करते इनके बुनियादी सारतत्व से वंचित होते जा रहे हैं और एक नई सारवस्तु को इनके साथ जोड़कर देखने लगते हैं। विज्ञापन में सहज वृत्तियों को मनुष्य के हृदय की इच्छाओं के स्रोत के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इसी क्रम में वह संप्रेषण की प्रक्रिया में मानवीय आवेगों को जागृत करके माल की खरीद के लिए तैयार करता है। इस संदर्भ में विज्ञापन की भाषा को समझने की जरूरत है। विज्ञापन की भाषा संकेत, चित्र, रंग, माध्यम व प्रकाश द्वारा निर्मित होती है। भाषा को यहां 'कोड' के अर्थ में ग्रहण किया जाना चाहिए। विज्ञापन के प्रसारण में दो कोडों का प्रयोग करते हैं। एक कोडन के लिए, दूसरा विकोडन के लिए। इस परिप्रेक्ष्य में भाषा केवल संप्रेषणात्मक ही नहीं अपितु प्रतिरूपण व्यवस्था भी है। ये दोनों अविच्छिन्न रूप से जुड़े हैं। विज्ञापन की भाषा में ग्राही और प्रेषक दोनों एक ही कोड का प्रयोग करते हैं। प्रस्तुतीकरण की परिस्थितियां पाठक को विज्ञापन पाठ को समझने में सहायक सिद्ध होती है। आज माध्यम संदेशों के द्वारा यह प्रयत्न किया जा रहा है कि दर्शक खरीददारी करे या अपनी राय व्यक्त करे। आज वर्गों, विचारधाराओं, सांस्कृतिक रूपों तथा यथार्थ के बीच अंतर करना कठिन हो गया है क्योंकि यथार्थ का स्थान इमेज व प्रतीकों ने ले लिया है। एडोर्नो व होर्खिमियर ने संस्कृति को 'पेराडॉक्सीकल कमोडिटी' कहा जहां शब्द ट्रेडमार्क हो जाते हैं। वे वस्तुओं के साथ जुड़ जाते हैं। उनका वास्तविक भाषायी अर्थ बहुत कम ग्रहण किया जाता है। विज्ञापन के दबाव के कारण ही संस्कृति उद्योग उपभोक्ता पर दबाव पैदा करता है।

8.4.6 पाठ का महत्व

रोलांबार्थ के अनुसार पाठ सिर्फ शब्दों तक सीमित नहीं है, वह बहुआयामी 'स्पेस' में वैविध्यपूर्ण लेखन में व्यक्त होता है। 'पाठ' के साथ 'पाठक' की भी भूमिका होती है। पाठक 'रचनात्मक साझीदार' है जो अर्थ के रोमांच' में जीता है। बार्थ ने 'पाठक' की भूमिका को 'पाठ' के विभिन्न संदर्भों में विश्लेषित किया है। पाठक ही पाठ की प्रक्रिया में विभिन्न अर्थों को प्रस्तुत करता है। लेखक की मृत्यु पर ही पाठक का जन्म हुआ। रोलांबार्थ ने जब 'फ्रॉम बर्क टु टैक्स्ट' में लेखन एवं पाठ के बीच की दूरी की समाप्ति की घोषणा की तो 'पाठ' को उत्पादक, रूपान्तरित स्पेस में बदल दिया। किसी कृति के पाठ की कोई एक निश्चित व्याख्या संभव नहीं है और न ही अंतिम व्याख्या। 'पाठ' का महत्त्व हमेशा बना रहता है और वर्तमान के संदर्भ में उसकी व्याख्या भी बदलती जाती है अतः अर्थ में शब्दार्थ के आधार पर अंतिम व्याख्या संभव नहीं। 'पाठ' पढ़ने की यह पद्धति नई समीक्षा की 'क्लोज रीडिंग ऑफ टैक्स्ट' की पद्धति से एकदम भिन्न है।

लेखक भाषिक संरचना के द्वारा अपने वैचारिक पूर्वग्रहों या अभिप्रायों को कितना भी छिपाने का प्रयास क्यों न करें, विखंडन के द्वारा वे प्रकट हो ही जाते हैं। कोई भी साहित्यिक कृति अन्य पाठों की तरह एक 'पाठ' है जिसके अनेक 'उपपाठ' हैं। इन अनेक उपपाठों की अनंत अर्थध्वनियां हैं। भाषा की अपनी सीमा है। हम अर्थों को प्राप्त नहीं कर सकते, उन्हें स्थगित करते जाते हैं। इस संदर्भ में 'नारी' भी एक पाठ है। इसका बाजारवादी उपभोक्तावादी 'पाठ' भी है। नारी-देह का एक अन्य 'पाठ' भी है। रोलांबार्थ के बाद जान लंका, जॉक देरिदा जूलिया क्रिस्टीवा और मिशेल फूको ने उत्तरसंरचनावादी तंत्र को विकसित किया। जॉन लंका ने फ्रायड के 'अहं' के सिद्धांत को नकार कर यह दृष्टि दी कि अवचेतन अस्तित्व नहीं रखता अपितु संरचना रखता है। देरिदा ने 'थ्योरी ऑव डिकस्ट्रक्शन' प्रस्तुत की जिसमें पाठ के निर्धारित अर्थ को विस्थापित किया जा सकता है और विखंडित भी। देरिदा के प्रमुख विचार 'ऑफ ग्रामटोलाजी', 'राइटिंग एंड डिफरेंस' तथा 'स्पीच एंड फिनोमिना' पुस्तकों में उपलब्ध हैं। फूको का 'विमर्श सिद्धांत' भी अर्थ की केन्द्रहीनता की बात करता है परन्तु उनका शिष्य एडवर्ड सईद सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक संघर्षों के इतिहास से जोड़कर नए अर्थों का पुनसर्जन करता है। यहां 'पाठ' को पाठक ही नहीं पढ़ता, पाठ भी पाठक को पढ़ता है।

8.4.7 स्त्रीपाठ का सिद्धांत

स्त्रियों की कृतियों को पढ़ते समय भिन्न तरह की भाषिक संरचना व पठन शैली की जरूरत होती है। स्त्री की भाषा पुरुष की भाषा से एकदम भिन्न होती है अतः उसके मानदंड भी भिन्न होंगे। स्त्रीभाषा को निर्धारित करने वाले तत्व सिर्फ 'पाठ' में ही नहीं होते बल्कि पाठ के बाहर भी होते हैं। स्त्रीवादी पठन सैद्धान्तिकी की दृष्टि से पाठ मात्र अर्थ तक सीमित नहीं, संवाद भी है। इस संवाद से ही अर्थ पैदा होता है। पाठ का अध्ययन करते हुए भाषा सम्बन्धी ज्ञान का स्तर, परिवेश, मूल्य, विश्वास तथा मान्यतायें सभी का ध्यान रखना चाहिए क्योंकि पाठ की व्याख्या से इनका गहरा सम्बन्ध है। स्त्री-पाठ कैसे लिखा जाता है और किस तरह पढ़ा जाता है - दोनों का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। पाठ का

वाक्य-विन्यास तथा किस प्रकार के सामाजिक समूह में पाठ पढ़ा जा रहा है, पाठकों के ज्ञान का धरातल क्या है आदि का ध्यान रखना भी अनिवार्य है। स्त्री-पाठ पढ़ते समय 'संदर्भ' देखना चाहिए। 'पाठ' व 'संदर्भ' की परम्परागत धारणाओं में परिवर्तन करना होगा। 'संदर्भ को स्त्री के संदर्भ में 'अतिरिक्त पाठ' कहा जाता है। यह मूल पाठ का अंग है। इसीकी खोज पाठ से शुरू होती है। स्त्री की भाषा पुरुष-भाषा के मानकों को तोड़कर ही बनी है। स्त्री का व्यक्तित्व, पाठ और भाषा ये तीनों अंन्तर्ग्रथित हैं। भाषा के अध्ययन में ध्वनि-संकेतों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। सामाजिक परिस्थितियों का जैसा प्रभाव भावों व विचारों पर पड़ता है वैसा ही प्रभाव उनको व्यक्त करने वाली शैली, शब्द-चयन तथा वाक्य विन्यास पर भी पड़ता है। सामाजिक जीवन में परिवर्तन के साथ भाषा भी परिवर्तित होती है।

8.5 सारांश

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि यद्यपि अनुवाद की परम्परा प्राचीन काल से चली आई परन्तु इसका स्वरूप युगनारूप परिवर्तित होता चला गया। जहां आधुनिक युग में इसे व्यवसाय तथा स्वतंत्रविधा के रूप में स्थापित किया गया वहीं इसे भाषिक, भाषावैज्ञानिक, सामाजिक सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में भी निरंतर देखने का प्रयास हुआ। उत्तरआधुनिकयुग में ज्ञान के स्वरूप में परिवर्तन हुआ। उसे वस्तु के रूप में देखा जाने लगा क्योंकि समाज में उपभोक्तावादी दृष्टि हावी हो गई। इसी क्रम में साहित्य को भी नए औजारों द्वारा पुनर्व्याख्यायित किया जाने लगा। उत्तरआधुनिक युग में महाख्यानों का निषेध, यथार्थ का अस्वीकार, संदेह दृष्टि, विकेन्द्रीकरण, विसंरचना तथा मृत्यु की घोषणाओं द्वारा विभिन्न बहुआयामी दृष्टियां प्रस्तुत हुई। वस्तुतः उत्तरआधुनिकता किसी एक सिद्धांत का नहीं, अनेक सिद्धांतों का नाम है। उत्तरआधुनिक युग में नवीन सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अवस्थाएं विद्यमान है जिनमें से विभिन्न बौद्धिक अभिवृत्तियां उत्पन्न हुई हैं। इस संदर्भ में अनुवाद में 'सृजनात्मक विजन' महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अनुवाद सामाजिक उत्तरदायित्व के प्रश्न को भी उठाता है जो आज के परिप्रेक्ष्य में निश्चय ही महत्त्वपूर्ण है। अनुवाद एक सम्पूर्ण संस्कृति को भी सामने लाता है अतः आज उत्तरआधुनिक सभ्यता एवं संस्कृति के सम्प्रेषण के लिए सिद्धांत भी आधुनिक सिद्धांतों से भिन्न है। पेरोडी व पेश्टीच के माध्यम से इतिहास को जाना जा सकता है। दलित साहित्य का अनुवाद करने से पूर्व उनके अन्तर्विरोधों तथा चुनौतियों को समझना होगा। इसे दलित दृष्टि के बजाए वैज्ञानिक दृष्टि से देखना होगा। फोटोजेनिक तथा टेलिजेनिक शैली भी 'फार्म', 'कन्टेंट' पर ध्यान देती है और कथ्य को अपने ढंग से अनूदित करती है। प्रतीकों द्वारा अभिव्यक्ति करते हुए विज्ञापन की भाषा को भी समझने की जरूरत है। पाठ की निश्चित व्याख्या नहीं हो सकती क्योंकि अर्थों को प्राप्त नहीं कर सकते, उसे स्थगित करते जाते हैं। स्त्रीकृति को अनूदित करने के समझने के अलग मानदण्ड हैं। अतः उत्तरआधुनिक युग में उत्तराआधुनिक अभिवृत्तियों के आधार पर ही अनुवाद के सिद्धांतों का निर्माण किया गया है जिसका सम्बन्ध मात्र भाषायी संदर्भ में ही नहीं अपितु विभिन्न प्रकार के माध्यमों द्वारा सम्प्रेषण की क्षमता में भी निहित है। यहां अभिप्राय सम्पूर्ण सामाजिक तथा सांस्कृतिक अवस्था के रूपांतरण से भी है।

8.6 शब्दावली

पैरोडी या पेश्टीच - उत्तरआधुनिक संदर्भ में जैम्सन ने इस शब्द का प्रयोग किया जो अप्रस्तुतियोग्य को व्यक्त करते हैं।

उपभोक्ता समाज - बौद्रिआ ने उत्तरआधुनिक समाज को उपभोक्ता समाज कहा जिसमें इच्छाओं व विलासित का जोर है।

विसंरचनावाद - उत्तरआधुनिकता से जुड़ा आंदोलन है - देरिदा का विसंरचनावाद जो पश्चिम के केन्द्रवाद को तोड़ता है और अर्थ को भाषा के बाहर खोजता है।

वृत्तांत व महावृत्तांत - विचारधारा को उत्तरआधुनिकता में वृत्तांत या महावृत्तांत कहा गया। अतीत के राजाओं के किस्से तथा आधुनिक विचारधाराएं मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद तथा मनोविश्लेषण वृत्तांत या महावृत्तांत कहलाए।

8.7 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. 'उत्तरआधुनिक' पदबन्ध का प्रयोग किस संदर्भ में किया जाता है?
2. उत्तरआधुनिकता के स्वरूप को स्पष्ट करें?
3. आधुनिकतावाद और उत्तरआधुनिकतावाद में अंतर स्पष्ट कीजिए?
4. उत्तरआधुनिकता की अभिवृत्तियों को स्पष्ट कीजिए?
5. उत्तर आधुनिक अनुवाद के सिद्धांत आधुनिक अनुवाद सिद्धांतों से कैसे भिन्न है - विवेचन कीजिए?

8.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. Singh, Avdesh K. (ed.), 1996, *Translation Its 'Theory and Practice*, New Delhi, Creative Books.
2. Priceardi, Alessandra (ed.), 2002, *Translation Studies, Perspectives on an Emerging Discipline*, Combridge University Press.
3. सिंहल, बैजनाथ, 2003, *उत्तरआधुनिकताः स्वरूप और आयाम,* हरियाणा साहित्य अकादमी।
4. वाजपेयी, कैलाश, 1999, *आधुनिकता का उत्तरोत्तर,* दिल्ली : सारांश प्रकाशन।
5. पचौरी, सुधीश, 2005, *उत्तरआधुनिक साहित्यिक विमर्श,* दिल्ली : वाणी प्रकाशन।
6. चतुर्वेदी, जगदीश्वर, 2004, *उत्तरआधुनिकतावाद,* दिल्ली : स्वराज प्रकाशन।